नमो नमो निम्मल दंसणस्स

3行(四)

भागः - १४

: संशोधक सम्पादकश्च

मुनि दीपरत्नसागर

Jain Education International

For Private & Personal Use Onl

www.jainelibrary.org





बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नमः नमो नमो निम्मल दंसणस्स श्री आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्योनमः

आगम सुत्ताणि (सटीकं)

भागः-१४

निरयार्वातेकाउपाङ्गसूत्रं, कल्पवर्तीसेकाउपाङ्गसूत्रं, पुष्पिकाउपाङ्गसूत्रं, पुष्पचृतिकाउपाङ्गसूत्रं, वृष्णिदशाउपाङ्गसूत्रं

चतुःशरणप्रकीर्णकसूत्रं, महाप्रत्याख्यानप्रकीर्णकसूत्रं, तंदुत्तवैचारिकप्रकीर्णकसूत्रं, गच्छाचारप्रकीर्णकसूत्रं, देवेन्द्रस्तवप्रकीर्णकसूत्रं, आतुरप्रत्याख्यानप्रकीर्णकसूत्रं, भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णकसूत्रं संस्तारकप्रकीर्णकसूत्रं गणिविद्याप्रकीर्णकसूत्रं मरमसमाधिप्रकीर्णकसूत्रं

-ः संशोधकः सम्पादकश्चः :-

मुनि दीपरत्नसागर

ता. १४/४/२०००

रविवार २०५६

चैत्र सुद ११

४५- आगम सुत्ताणि-सटीके मूल्य रू.११०००/-

🛂 आगम श्रुत प्रकाशन 🛂

∹ संपर्क स्थल :−

''आगम आराधना केन्द्र'' शीतलनाथ सोसायटी विभाग-१, फ्लेट नं-१३, ४-थी मंझिल, ब्हायसेन्टर, खानपुर, अहमदाबाद (गुजरात)





| आगमाः-१९३३ विषयानुक्रमः | | | | | | | | |
|---|---|------------|----------|--------------------------|---------------|--|--|--|
| मूलाङ्कः | विषयः | वृष्ठाङ्कः | मूलाङ्क: | विषयः | पृष्ठाङ्कः | | | |
| | १९ नियावलिकाउपाङ्गसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | |
| 9-98 | अध्ययनं-१ कालः | ų | -२9 | अध्ययनानि-३9० | २६ | | | |
| -२० | अध्ययनं-२ सुकालः | २६ | | कृष्णः, सुकृष्णः इत्यादि | | | | |
| • | २० कल्पवतंसिकाउपाङ्गसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | |
| 9 | अध्ययनं-१ पद्मः | ঽড় | રૂ-પ્ | अध्ययनानि-३१० | २८ | | | |
| - - -> | अध्ययनं-२ महापद्मः | २८ | | भद्रः, समुद्रः इत्यादि | | | | |
| २१ पुष्पिकाउपाङ्गसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | | |
| 9-3 | अध्ययन-१ चन्द्रः | ३० | -9 | अध्ययनं-५ पूर्णभद्रः | ४८ | | | |
| -8 | अध्ययनं-२ सूर्यः | ३२ | -90 | अध्ययनं-६ माणिभद्रः | ४८ | | | |
| ي. | अध्ययनं-३ शुक्रः | ३२ | -99 | अध्ययनानि-७१० | ४९ | | | |
| C | अध्ययन-४ बहुपुत्रिका | ४० | | दत्तः, शिवः इत्यादि | | | | |
| २२ पुष्पचूलिकाउपाङ्गसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | | |
| 9-3 | अध्ययने-१ भूता | ५० | -3 | अध्ययनानि-२१० | બર | | | |
| २३ वृष्णिदशाउपाङ्गसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | | |
| 9-३ | अध्ययनं-१ निषदः | ५३ | ૪- ધ | अध्ययनानि-२१२ | ي. | | | |
| २४ चतुःशरणप्रकीणर्कसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | | |
| 3-19 | आवश्यक-अर्थाधिकारः | نبرح | - | दुष्कृतगही | 198 | | | |
| ٦٩, | मंगल-आदिः | ξο | -4.0 | सुकृत-अनुमोदना | : ડ 'ડ | | | |
| -84 | चतुःशरणं | ६३ | -६३ | उपसहारः | ઉ૮ | | | |
| २५ आतुरप्रत्याख्यानप्रकीर्णकसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | | |
| 9-90 | प्रथमा-प्ररुपणा | 198 | - አር | असमाधिमरणं | ८६ | | | |
| -33 | प्रतिक्रमणादि आलोचना | ८ ٦ | -199 | पंडितमरण एवं | 66 | | | |
| -3£ | आलोचनादायकः-ग्राहकः | ८६ | | आराधनादिः | | | | |

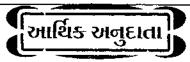
| मूलाङ्कः | विषय: | पृष्ठाङ्कः | मूलाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः | | |
|--|-------------------------|------------|---------------|--------------------------|------------|--|--|
| २६ महाप्रत्याख्यानप्रकीर्णकसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | |
| 9-2 | मङ्गलं | ९३ | -96 | भावना | ९४ | | |
| -19 | व्युत्सर्जन, क्षमापनादि | ९३ | -३६ | मिथ्यात्वत्याग, आलोचनादि | ९५ | | |
| -9२ | निन्दा-गर्हाआदि | ९४ | -485 | विविधं धर्मोपदेशादि | ९७ | | |
| २७ भक्तपरिज्ञाप्रकीर्णकसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | |
| 9-8 | मङ्गलं, ज्ञानमहत्ता | 990 | -२३ | आलोचना प्रायश्चित् | 999 | | |
| ي- | शाश्वत अशाश्वत सुखं | 990 | -33 | व्रत-सामायिक-आरोपणं | 993 | | |
| -99 | मरण भेदानि | 999 | -9७३ | आचरणा, क्षमापना आदि | 998 | | |
| २८ तन्दुलवैचारिकप्रकीर्णकसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | |
| 9-३ | मङ्गलं-द्वाराणि | 939 | -७४ | देहसंहननं-आहारादि | 950 | | |
| ල- | गर्भः-प्रकरणं | १३३ | -९५ | काल-प्रमाणं | १६५ | | |
| -૫છ | जीवस्यदशदशा | १३४ | -9 9 Ę | अनित्य, अशुचित्वादि | १७६ | | |
| -६४ | धर्मीपदेश एवं फलं | १५० | -9६9 | उपदेशः, उपसंहारः | १९४ | | |
| २९ संस्तारकप्रकीर्णकसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | |
| 9-30 | मङ्गलं, संस्तारकगुणाः | १९५ | -66 | संस्तारकस्य दृष्टान्ताः | २०१ | | |
| - ५५ | संस्तारकस्वरूपं, लाभं | १९८ | -933 | भावना | २०५ | | |
| ३० गच्छाचारप्रकीर्णकसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | |
| 9-2 | मङ्गलं-आदि | २०९ | -१०६ | गुरुस्वरूपं | २२३ | | |
| -દ્ | गच्छे वसमानस्य गुणाः | २१० | -938 | आर्यास्वरूपं | २४६ | | |
| -80 | आचार्यस्वरूपं | २१० | -9 ३७ | उपसंहार: | २५६ | | |
| ३९ गणिविद्याप्रकीर्णकसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | |
| 9-3 | प्रथमंद्वारं-दिवसं | २५९ | -لوح | षष्ठंद्वारं-मुहूर्त | २६४ | | |
| -90 | द्वितीयंद्वारं-तिथिः | २५९ | -६३ | सप्तमंद्वारं-शकुनबलं | २६६ | | |
| -89 | तृतीयंद्वारं-नक्षत्रः | २६० | -199 | अष्टमंद्वारं लग्नः . | २६६ | | |
| -४६ | चतुर्थद्वार-करणं | २६४ | -८४ | नवमंद्वारं-निमित्तबलं | २६७ | | |
| -४८ | पश्चमंद्वारं-ग्रहः | २६४ | -૮५ | उपसंहारः | २६९ | | |

| मूलाङ्कः | विषय: | पृष्टाङ्कः | मूलाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः | | | |
|--|-------------------------|------------|---------------|----------------------|------------|--|--|--|
| ३२ देवेन्द्रस्तवप्रकीर्णकसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | | |
| 9-99 | मङ्गलं, देवेन्द्रपृच्छा | २७० | ২৩३ | वैमानिक-अधिकारः | २८९ | | | |
| -६६ | भवनपति अधिकारः | २७१ | -३०२ | इसिप्रभापृथ्वि एवं | 309 | | | |
| -८० | वाणव्यन्तर अधिकारः | ২৩৩ | | सिद्धाधिकारः | | | | |
| -989 | ज्योतिष्क-अधिकारः | ২ড९ | - ३० ७ | जिनऋध्यः, उपसंहारः | ३०५ | | | |
| ३३ मरणसमाधिप्रकीर्णकसूत्रस्य विषयानुक्रमः | | | | | | | | |
| 9-90 | मरणविधिः आरम्भः | ३०६ | -২५७ | आतुरप्रत्याख्यानादि | ३३० | | | |
| -८३ | आराधना, मरणस्वरूपं | ३०७" | -२६६ | पश्चमहाव्रतस्यरक्षा | ३३६ | | | |
| -65 | आचार्यस्य गुणाः | ३१६ | -४१२ | आराधना, उपदेश आदिः | ३३७ | | | |
| -9२६ | आलोचनावर्णनं | રૂ૧૭ | ٠٩٥٠ | विविध-उदाहरणादि | ३५४ | | | |
| -१२८ | तपसः भेदाः | ३२० | -५५० | मरणभेदानि निरुपणं | ३६७ | | | |
| -946 | ज्ञानादि गुण वर्णनं | ३२१ | -५६९ | आराधना-अनुचिंतन | 360 | | | |
| -908 | आत्मनः शुद्धि | ३२३ | -६३९ | द्वादश-भावना | ३७२ | | | |
| -२०७ | संलेखना | ३२६ | -इइ४ | पण्डितमरणं, उपसंहारः | 370 | | | |

भागः-१४

आगमाः-१९.....३३ पर्यन्ताः

- निरयावलिकादिउपाङ्गपञ्चक -
 - दशप्रकिर्णकानि -



-૫.પૂ. માલવભુષણ તપસ્વી આચાર્યદેવ શ્રી નવરત્નસાગર સૂરીશ્વરજી મ.સા.ની પ્રેરણથી શ્રી લાલભાઈ દેવચંદ શાહ તરફથી - નકલ એક.

ન્ય.પૂ. સરળ સ્વભાવી-શ્રીમદ્ ભગવતીસૂત્ર વ્યાખ્યાન પટુ આચાર્યદેવ શ્રી નરદેવસાગરસૂરીશ્વરજી મ.સા. તથા પૂજ્યશ્રીના શિષ્યરત્ન તપસ્વી ગણિવર્ચશ્રી ચંદ્રકીર્તિસાગરજી મ.સા.ની પ્રેરણાથી શ્રી પુરુષાદાનીય પાર્શ્વનાથ શ્રે. મૂર્તિ. જૈન સંઘ, દેવકીનંદન સોસાયટી, અમદાવાદ તરફથી નકલ એક.

-૫.પૂ. શાસન પ્રભાવક-ક્રિયારાગી આચાર્યદેવશ્રી વિજય ૠચકરાંદ્ર સૂરીશ્વરજી મ.સા.ની પ્રેરણાથી એક સદ્ગૃહસ્થ તરફથી નકલ એક.

-૫.પૂ. સાહિત્યપ્રેમી મુનિરાજ શ્રી સર્વોદય સાગરજી મ.સા.ની પ્રેરણાથી-"અચલગચ્છાદ્વિપતિ ૫.પૂ.આ.ભ.શ્રી ગુણસાગરસૂરીશ્વરજી મ.સા.ના શિષ્યરત્ન ૫.પૂ. મુનિરાજ શ્રી ચારિગરત્નસાગરજી મ. ની ૧૯મી અહાઇ નિમિત્તે-શ્રી ચારિગરત્ન ફા.ચે.ટ્રસ્ટ તરફથી નકલ એક.

-૫.પૂ. વૈયાવૃત્ત્યકારિકા સાધ્વી શ્રી મલયાશ્રીજી મ.સા.ના શિષ્યા વ્યવહાર વિચક્ષણા પૂ. સાધ્વી શ્રી હિતજ્ઞાશ્રીજી મ.ની પ્રેરણાથી જેન આરાધના મંદિર-"જ્ઞાનખાતા" તરફથી નકલ એક.

-૫.પૂ. સોમ્યમૂર્તિ સાધ્વીશ્રી સોમ્યગુણાશ્રીજી મ.ની પ્રેરણાથી ૫.પૂ. ગુરુમાતા-વાત્સલ્યમૂર્તિ સા.શ્રી રત્નત્રયાશ્રીજી મ.ની પંચમી પુન્યતિથિ નિમિત્તે શ્રીમતી લીલમબેન પ્રાણલાલ પી. દામાણી તરફથી નકલ એક.

-૫.પૂ. સ્વનામધન્યા સા. શ્રી સોમ્યગુણાશ્રીજી તથા તેઓના શિષ્યા સા.શ્રી સમજ્ઞાશ્રીજીની પ્રેરણાથી-૨૦૫૩ના ચશસ્વી ચાતુર્માસ નિમિત્તે શ્રી પાર્શ્વપદ્માવતી જૈન સંઘ, પારૂલનગર, અમદાવાદ તરફથી નકલ બે.

-૫.પૂ. રત્નગયારાધકા સાધ્વીશ્રી સોમ્યગુણાશ્રીજી તથા તેઓશ્રીના શિષ્યા સા. શ્રી સમજ્ઞાશ્રીજીની પ્રેરણાથી સંવત ૨૦૫૪ના નિર્મળ આરાધનામય ચાતુર્માસની સ્મૃતિમાં-ઘાટલોડિયા (પાવાપુરી) જેન શ્વે. મૂર્તિ. સંઘ, અમદાવાદ તરફથી નકલ એક. -૫.પૂ. સાધ્વી શ્રી રત્નગયાશ્રીજી મ.ના પરમ વિનેચા સા.શ્રી સોમ્યગુણશ્રીજીની પ્રેરણાથી તેઓના સંસારીભાઈશ્રી ઇન્દ્રવદનભાઈ દામાણીના અનુમોદનીય પુરુષાર્થથી "આગમ દીપ-સંપુટ"ના બદલામાં પ્રાપ્ત રક્મમાંથી-નક્લ ચાર.

-૫.પૂ. પ્રશમરસનિમગ્ના સાધ્વીશ્રી પ્રશમશીલાશ્રીજી મ.ની પ્રેરણાથી-સમ્મેતશિખર તિર્થો દ્ધારિકા ૫.પૂ. સાધ્વીશ્રી રંજનશ્રીજી મ.સા.ના શિષ્યા અપ્રતિમ વૈયાવૃત્ત્યકારિકા સા.શ્રી મલયાશ્રીજી તત્ શિષ્યા સા. શ્રી નરેન્દ્રશ્રીજી-તત્ શિષ્યા સા. શ્રી પ્રગુણાશ્રીજી મ.ના. આત્મશ્રેયાર્થે-અરિહંત ટાવર, જેન સંઘ, મુંબઇ તરફથી નકલ એક.

-૫.પૂ. આગમોદ્ધારક આચાર્યદેવશ્રી ના સમુદાયવર્તી ૫.પૂજ્ય પૈયાવૃત્ત્યકારિકા સા.શ્રી મલયાશ્રીજી મ.ના શિષ્યા પૂ.સા. શ્રી કૈવલ્યશ્રીજી મ.ના શિષ્યા પૂ.સા.શ્રી ભવ્યાનંદશ્રીજી મ.સા.ના સુશિષ્યા મિષ્ટભાષી સાધ્વીશ્રી પૂર્ણપ્રજ્ઞાશ્રીજી મ.સા. તથા તેમના વિનિત શિષ્યા સા. શ્રી પૂર્ણદર્શિતાશ્રીજી તથા સા. પૂર્ણનંદીતાશ્રીજીની પ્રેરણાથી-સર્વોદય પાર્શ્વનાથ ચેરીટેબલ ટ્રસ્ટ, મુલુન્ડ મુંબઇ તરફથી નકલ એક.

-૫.પૂ. વૈયાવૃત્ત્યકારિકા સાધ્વીશ્રી મલચાશ્રીજી મ.ના પ્રશિષ્યા સા. શ્રી ભવ્યાનંદશ્રીજીમ.ના સુવિનિતા સા.શ્રી કલ્પપ્રજ્ઞાશ્રીજી તથા કોકીલકંઠી સા. શ્રી કૈરવપ્રજ્ઞાશ્રજી ની પ્રેરણાથી -મેહુલ સોસાયટી, આરાધનાભવન, સુભાષનગર, વડોદરાની બહેનો તરફથી નકલ એક

- -શ્રી વિશાશ્રીમાળી તપગચ્છજ્ઞાતિ-જ્ઞાનખાતું, જેન પાઠશાળા, જામનગર તરફથી નકલ છે.
- -શ્રી મંગળ પારેખનો ખાંચો-જેન શે. મૂર્તિ. સંઘ, અમદાવાદ. તરફથી ૨૦૫૪ના ચાતુર્માસ નિમિત્તે નક્લ બે.
 - શ્રી આકોટા જેન સંઘ, વડોદરાની બહેનો તરફથી નકલ એક.
- -શ્રીમતી નયનાબેન રમેશચંદ્ર શાહ, વડોદરાની પ્રેરણાથી આગમોના સેટના બદલામાં પ્રાપ્ત રકમમાંથી નકલ પાંચ.

શેષ સર્વે રકમ "અમારા"આજ પર્યન્ત પ્રકાશનોના બદલામાં પ્રાપ્ત થયેલી છે. नमो नमो निम्मल दंसणस्स पंचम गणधर श्री सुमर्गास्वामिने नमः

२८ तन्दुलवैचारिक-प्रकिर्णकसूत्रम्

सटीक

(पञ्चमं-प्रकिर्णकम्)

(मूलसूत्रम् + विजयविमल विरचिता वृत्तिः)

11911

ऋषमं वृषसंयुक्तं, वीरं वैरनिवारकम् । गीतमं गुणसंयुक्तं, सिद्धान्तं सिद्धिदायकम् ॥

11211

प्रणम्य स्वगुरुं भक्त्या, वक्ष्ये व्याख्यां गुरोः शुभाम् ।

तन्दुलाख्यप्रकीर्णस्य, वैराग्यरसवारिधेः ॥

षृ. ननु कियन्ति प्रकीर्णकानि कथ्यन्ते, कथं तेषां चोत्पत्ति ? उच्यते 'नंदी १ अनुओगदाराइं २ देविंदत्यओ ३ तंदुलवेयालियं ४ चंदाविज्झय ५ मित्यादीनि श्रीनन्दीसूत्रोक्तानि कालिकोत्कालि-कमेदिभन्नानि चतुरशीतिसहस्रसंख्यानि प्रकीर्णकान्यभवन् श्रीऋषभस्वामिनः, कथं ? ऋषभस्य चतुरशीतिसहस्रप्रमाणाः श्रमणा आसीरन्, तैरेकैकस्य विरचितत्वात् १, एवं संख्येयानि प्रकीर्णक-सहस्राणि आसीरन्रजितादीनां मध्यमजिनानां, यस्य यावन्ति भवन्ति तस्य तावन्ति प्रथमानुयोगतो वेदितव्यानि २, चतुर्दशप्रकीर्णकसहस्राणि आसीरन् वर्द्धमानस्वामिनः ३ इति, तेषां मध्ये श्रीवर्द्ध-मानस्वामिस्वहस्तदीक्षितेनैकेन साधुना विरचितमिदं तन्दुलवैचारिकं प्रकीर्णकं, तस्य व्याख्या क्रियत इति—

मू. (9) निज़रियजरामरणं वंदिता जिनवरं महावीरं । वुच्छं पयण्णयमिणं तंदुलवेयालियं नाम ॥

ष्ट्. 'निज्ञरिय' ० निर्जरितं -सर्वथा क्षयं नीतं जरा च-वृद्धत्वं मरणं च-पश्चत्वं जरामरणं यद्धा जरया-वृद्धभावेन जरायां -वृद्धभावे वा मरणं जरामरणं येन स निर्जरितजरामरणस्तं, विदित्वा-कायवाङ्भनोभिः नत्वा जिनाः -रागद्धेषादिजयनशीलाः सामान्यकेवलिनस्तेषु तेभ्यो वावरः -प्रधानोऽतिशयापेक्षया श्रेष्ठो जिनवरस्तं जिनवरं, अतिशयस्वरूपं समवायाङ्गोक्तं यथा- 'चोत्तीस बुद्धातिसेसा पं० तं०--

अविहिए केसमंसुरोमणहे १ निरामया निरुवलेवा गायालडी, अयं जन्मप्रत्ययः २ गोखीरपंडुरे मंससीणिए, जन्मप्रत्ययः ३ पउमुप्पलगंधिए उस्सासनिस्सासे, जन्मप्रत्ययः ४ पच्छन्ने आहारनीहारे अदिस्से मंसचक्खुणा, जन्मप्रत्ययः ५ आगासगयं चक्कं ६ आगासगयं छत्तं ७ आगासियाओ सेयवरचामराओ ८ आगासफालियमयं सपायपीढं सीहासनं—आकाशमिव— यदत्यन्तमच्छं स्कृटिकं तन्मयं ९ आगासगओ कुडभीसहस्सपरिमंडियाभिरामो इंदण्झओ पुरओ गच्छति १०

जत्थ जत्थिविय णं अरहंता भगवंतो चिडंति वा निसीयंति वा तत्थ तत्थिवय णं तक्खणादेव संख्ण्णपत्तपुष्फपल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडाओ असोगवरपायवो अभिसंजायित ११ ईसिं पिड्ठो मउडहाणंमि तेयमंडलं अभिसंजायित, अंधकारेविय णं दस दिआसो पभासेंद्र ईषद्—अल्पं 'पिड्डओ'ति पृष्ठतः पश्चादभागे 'मउडठाणंमि'ति मस्तकप्रदेशे १२।

— बहुसमरमणिन्ने भूमिभागे १ ३ अहोसिरा कंटगा भवन्ति १ ४ उक्क विवरीया सुहफासा भवन्ति १ ५ सीयलेणं सुहफासेणं सुरिभणा मारुएणं जोयणपरिमंडलं सव्वओ समंता संपमिन्नि १ ६ जुत्थफुिसएण य मेहेण निहयरयरेणुयं कन्नइ—'जुत्तफुिसएणं'ति उचितिबन्दुपातेन 'निहयरयरेणुयं कन्नइ—'जुत्तफुिसएणं'ति उचितिबन्दुपातेन 'निहयरयरेणुयं'ति वातोदध्मातमाकाशवर्ति रजः भूवर्ती तु रेणुिरित गंधोकवर्षिभधानः १७ जलयल यभासुरप्पभूएणं विंटहाइणा दसद्धवन्नेणं कुषुमेणं जाणुस्सेहपमाणिभित्ते पुष्कोवयारे कन्नइ', एतेन सूत्रेणयत् केचिदाहुः—वैक्रियाण्येवैतान्यतोऽचितानीतितदयुक्तं, अन्ये त्वाहुः—यत्र व्रतिनिल्धि छन्ति न तत्र देवाः पुष्पपृष्टिं कुर्वन्ति १, अन्ये प्राहुः—देवादिसंमर्दादचित्तता तेषां २, अपरे त्वाहुः-भगवदितिशयाद्यत्यादिसंचरणेऽपि न पुष्पजीववधः किन्तु पृष्टिरेवेति ३, प्रवचनसारोद्धारटीकाणं तु सर्वगीतार्थसम्मतं तृतीयमतमङ्गीकृतमस्तीति १८, अमणुण्णाणं सद्दफिसरसरूवगंधाणं आककिरसो भवति अपकर्षः—अमावः १९, मणुण्णाणं सद्दफिसरसरूवगंधाणं पाउब्मावो भवति प्रादुर्भावः २० पद्माहरओऽविय णं हिययगमणीओ जोयणणीहारी सरोप्रत्याहरतो—व्याकुर्वतो भगवत इति २१ भगवं च णं अद्धमागधाए भासाए धम्ममाइक्खइ २२।

-सावियणं अद्धमागधमासा भासिज्ञमाणी तेसिं सब्वेसिं आयिरयमनारियाणं दुपयचउपय-पसुपक्खीसरीसिवणं अप्पप्पणो हियसिवसु हदाइ भासत्ताए परिणमित २३ पुव्बबद्धवेतिवय णं देवासुरनागसुवन्नजक्खरकखसिकन्नरिकंपुरिसगरुलगंधव्यमहोरगा अरहओ पायमूले पसंतिक-त्तमणसा धम्मं निसामंति २४ अन्नउत्थियपावयणीविय णं आगया वंदंति २५ आगया समाणा अरहओ पायमूले निप्पडिवयणा मवंति २६ जओ जओविय णं अरहंता भगवंतो विहरंति तओ तओविय णं जोयणपणवीसाएणं ईती न भवति २७ मारी न भवति २८ सचक्कं न भवति २९ परचक्कं न भवति ३० अइबुद्धी न भवति ३१ अनावुद्धी न भवति ३२ दुभिक्खं न भवति ३३ पुद्युप्पण्णाविय णं उप्पातिया वाही खिप्पामेव उवसमंति ३४।

अत्रच 'पुद्याहरउ' इति आरभ्य १४ येऽभिहितास्तेप्रभामण्डलं च कर्मक्षयकृता अतिशेषा, शेषा भवप्रत्ययेभ्योऽन्ये देवकृता इति । ननु प्राकाराम्बुरुहाद्यतिशया देवकृता अपि चतुर्स्त्रिशद् बहिः कथम् ?, उच्यते, चतुर्स्त्रिशत् किल नियता अन्ये त्वनियता इति, इदं च किल न स्वबुद्ध्या प्रोच्यते, यदुक्तं श्रीजिनभद्रक्षमाश्रमणैः विशेषणवत्यां—

॥ २ ॥ चोत्तीसं किर नियया ते गहिया सेसया अनिययत्ति । सुत्तंमि न संगहिया जह लद्धीओ विसेसाओ ॥ इति ।

तथा ननु यत्र तीर्थकरा विहरन्ति तत्र देशे पञ्चविंशतियोजनानामानदेशान्तरेण द्वादशानं मध्ये तीर्थकरातिशयात् न वैरादयोऽनर्था भवन्तीत्यत्रोक्तं तत्कयं श्रीमन्महावीरे भगवति पुरिमतारे नगरे व्यवस्थित एवाभग्रसेनस्य विपाकश्रुताङ्गवर्णितो व्यतिकरः सम्पन्न इति ?, अत्रोच्यते, सर्विमदमर्थानर्थजातं प्राणिनां स्वकृतकर्म्मणः सकाशादुपजायते, कर्म तु द्वेधा—सोपक्रमं निरुपक्रमं च, तत्र यानि वैरादीनि सोपक्रमकर्मसम्पाद्यानि तान्येव तीर्थकरातिशयादुपशाम्यन्ति, सदोषदात् साध्यव्याधिवत्, यानि तु निरुपक्रमकर्मसम्पाद्यानि तानि अवश्यं विपाकतो वेद्यानि नोपक्रमकरणविषयानि, असाध्यव्याधिवत्, अत एव सर्वातिशयसम्पत्समन्वितानां जिनानाम-पनुपशान्तवैरभावा गोशालकादय उपसर्गान् विहितवन्त इति । महांश्चासौ वीरश्चकर्मवि-दारणसिहण्णुर्महावीरस्तम्, 'वुच्छं'ति वश्ये—भणिष्यामिप्रकीर्णकं—श्रीवीरहस्तदीक्षितमुनिवरिवतं नन्दीसूत्रोक्तग्रन्थविशेषमिदं—प्रत्यक्षं तन्दुलानां वर्षशतायुष्कुरुषप्रतिदिनभोग्यानां सङ्खयावि-चारेणोपलक्षितं तन्दुलवैचारिकं नामेति ॥ १ ॥

मङ्गलाचरणमभिधेयं च प्रतिपाद्यात्र द्वारगाथाद्वयमाह-

मू. (२) सुणह गणिए दह दसा वाससयाउस्स जह विभज्जंति । संकलिए वोगसिए जं चाउं सेसयं होइ ।।

षृ. 'सुणह०' अत्र पदानां सम्बन्धोऽयं – वर्षशतायुषो जन्तोर्यथा दश दशा – दशावस्थाः 'विभजन्ती'ति पृथग भवन्ति तथा यूयं शृणुत, क्व सित ? –गणिते –एकद्वयादीति क्रियमाणे सित, तथा दशदशा सङ्गलिते –एकत्रमीलिते तथा व्युक्तर्षिते –निष्कासिते सित 'वाससयं परमाउं इतो पत्रासं हरइ निद्दाए' इत्यादिना यद्यायुःशेषकं भवति तदिष यूयं शृणुत ॥

पू. (३) जित्यमित्ते दिवसे जित्यसईमुहुत्तमुस्सासे । गर्कामि वसइ जीवो आहारविहि च वुच्छामि ॥

वृ. यावनमात्रान् दिवसान् यावद्रात्रीर्यावन्मुहूर्त्तान् यावदुच्छासान् जीवो गर्भे वसति तान् वक्ष्ये, गर्भादिके आहारविधिं चशब्दाच्छरीररोमादिस्वरूपं च वक्ष्ये-भणिष्यामीति ॥

तत्र गर्भे अहोरात्राणां प्रमाणमाह-

मू. (४) दुन्नि अहोरत्तसए संपुण्णे सत्तसत्तरिं चेव । गव्नांमि वसइ जीवो अद्धमहोरत्तमण्णं च ॥

षृ. ''दुन्नि'' द्वे अहोरात्रशते (२००) सम्पूर्णे सप्तसप्तत्यधिके (७७) अन्यदर्धमहोरात्र च जीको गर्भे वसति–तिष्ठति, एतावता नव मासान् सार्धप्तदिनांश्च जीवो गर्भे तिष्ठतीत्वर्थः ।

मू. (५) एए तु अहोरत्ता नियमा जीवस्स गब्भवासंमि । हीणाहिया उ इत्तो उवघायवसेण जायंति ।।

षृ. "एए तु" एते-उक्तरूपा अहोरात्रा निश्चयेन जीवस्य गर्भवासे भवन्ति 'इत्तो'ति असादुक्तादहोरात्रप्पाणात् उपघातवशेन-वातिपत्तादिदोषेण हीनाधिका अपि 'जायंति'त्ति धातूनामेनकार्थत्वात् भवन्तीत्यर्थः, तु शब्दोऽप्यर्थः स च योजित इति।

पू. (६) अड सहस्सा तित्रि उ सया मुहुत्ताण पत्रवीसा य । गब्भगओ वसइ जीओ नियमा हीणाहीया इत्तो ।।

षृ. अथ गर्भे मुहूर्ताना प्रमाणमाह—"अइ सहस्सा" अष्टी सहस्राणि त्रीणि शतानि पश्चविंश-यधिकानि मुहूर्तानि (८३२५) निश्चयेन जीवो गर्भे वसति, तानि च कथं भवन्ति ?, उक्तलक्षणाः सप्तसप्तत्यधिकद्विशताहोरात्राः (२७७) त्रिंशता गुणिताः (८३१०) एतावन्तो भवन्ति, अर्द्धाहोरात्रस्य चपश्चदश मुहूर्त्तानि क्षिप्यन्ते जातानि (८३२५) इति, इतः—उक्तरूपात् (८३२५) वातदोषादिकारणेन हीनाधिकान्यपि मुहूर्त्तानि वसति गर्मे जीव इति ।

मू. (७) तित्रेव य कोडीओ चउद्दस य हवंति सयसहस्साइं। दस चेव सहस्साइं दुन्नि सया पण्णवीसा य ।। मू. (८) उस्सासा निस्सासा इत्तियमित्ता हवंति संकलिया । जीवस्स गढ्भवासे नियमा हीणाहिया इत्तो ।।

षृ. अथ गायाद्वयेन गर्भे निश्वासोच्छासप्रमाणमाह—"तिश्चेवo" "उस्सास" तिस्रःकोट्यः चतुर्दश शतसहस्राणि—चतुर्दश लक्षाणीत्यर्थः दश सहस्राणि द्वेशते पश्चविंशत्यधिके इति (३१४०२२५) 'इत्तियमिता' इति एतावन्मात्राः सङ्कलिताः—एकीकृताः जीवस्य गर्भवासे निश्चयेन निश्वासोच्छ्वासा भवन्ति, कथं?, एकस्मिन्नन्तर्मु (न्मु)हूर्ते सप्तत्रिंशच्छातानि त्रिसप्तत्यधिकानि (३७७३) निश्वासोच्छ्वासा भवन्ति, एतैश्च पदैः तानि (८३२५) उक्तरूपाणि मुहूर्तानि गुण्यन्ते तदा यथोक्तं (३९४९०२२५) एतद् भवतीति, इतः—उक्तरूपात् वातादिकारणेन हीनाधिका निश्वासोच्छासा भवन्तीति ।। अथाहाराधिकारे किश्चदृगर्भादिस्वरूपमाह—

- मू. (९) आउसो ! इत्थीए नाभिहिट्ठा सिरादुगं पुष्फनालियागारं । तस्स य हिट्ठा जोणी अहोमुहा संठिया कोसा ।।
- षृ. ''आउसो! इत्यी॰''हे आयुष्मन्!-हे गौतम! स्त्रयाः-नार्या नाभेरधः-अधोभागे पुष्पनालिकाकारं-सुमनोवृन्तसध्शंशिराद्विकं-धमनियुग्मं वर्त्तते, च पुनस्तस्य-शिराद्विकस्याधो योनिः-स्मरकूपिका संस्थिता अस्ति, किंभूता? अधोमुखा, पुनः किंभूता? –'कोस'ति कोशा-खङ्गपिधानकाकारेत्यर्थः ॥
 - मू. (१०) तस्स य हिट्ठा चूयस्स मंजरी (जारिसी) तारिसा उमंसस्स । ते रिउकाले फुडिया सोणियलवया विमोयंति

षृ. ''तस्य य०'' तस्याश्च योनेरधः -अधोभागे 'चूतस्य' आम्रस्य यार्दश्यो मञ्जर्यी -वल्लरयो भवन्ति तार्दश्यो मांसस्य-पललस्य मञ्जरयो भवन्ति, ता मञ्जरयः स्त्रीणां मासान्ते यदजस्रमिश्रं दिनत्रयं श्रवति तदऋतुकालः-स्त्रीधर्मप्रस्तावस्तस्मिन् स्फुटिताः-प्रफुष्टाः सत्यः शोणितलव-कान्-रुधिरबिन्दून् विमुञ्जन्ति-श्रवन्ति ॥

मू. (९९) कोसायारं जोणि संपत्ता सुक्कमीसिया जइया । तइया जीवुववाए जुग्गा भणिआ जिणिदेहिं ।।

वृ. ''कोसा०''ते रुधिरिबन्दवः कोशाकारां योनि सम्प्राप्ताः सन्तः शुक्रमिश्रिताः-ऋतुदिनत्रयान्ते पुरुषसंयोगेन अपुरषसंयोगेन वा पुरुषवीर्येण मिलिताः 'जइय'त्ति यदा भवन्ति 'तइय'त्ति तदा जीवोत्पादे—गर्भसम्भूतिलक्षणे योग्या भणिता—कथिता जिनेन्द्रैः—सर्वज्ञैरितिननु कथं पुरुषासंयोगे पुरुषवीर्यसम्भव इति ?, अत्रोच्यते, स्थानाङ्गाभिप्रायेण यथा—''पंचिहं ठाणेहिमित्थी पुरिसेण सिद्धं असंवसमाणीवि गब्मं धरेज्ञा, तं०—इत्यी दुव्विप्यद्यडा दुन्निसन्ना सुक्रप्योग्गले अधिद्विज्ञा १ सुक्रप्योग्गलसंसद्दे व से वत्ये अंतो जोणीए अनुपवेसेज्ञा २ सयं व से सुक्रपोग्गले अनुपवेसेञ्जा ३ परो व से सुक्रपोग्गले अनुपवेसेञ्जा ४ सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्रपोग्गले अनुपवेसेञ्जा५इचेतेहिं।

पंचजावधरेजा' दु० परधानवर्जितेत्यर्थः, दुर्त्रिषण्णा पुरुषशुक्रपुद्गलान् कथिश्चत् पुरुषिनसृष्टान् आसनस्थानिधितिष्ठेत्—योन्याकर्षणेन सङ्गृह्णीयात् (१) तथा शुक्रपुद्गलसंसृष्टं 'से' तस्याः स्त्रिया वस्त्रमन्तः—मध्ये योनावनुप्रविशेद्, इह च वस्त्रमित्युपलक्षणं तथाविधमन्यदिप अनुप्रविशेदिति २१ स्वयमिति पुत्रार्थिनीत्वाच्छीलरक्षकत्वाच्च 'से'तिं सा शुक्रपुद्गलान् योनावनुरवेशयेत् ३ परो वत्ति श्वश्रूप्रभृतिकः पुत्रार्थमेव 'से' तस्या योनाविति ४ शीतोदकलक्षणं यद्विकटं पल्वलादिगतमित्यर्थः तेन वा 'से' तस्याः आचरमन्त्याः पूर्वपतिता—उदकमध्यवर्तिनः शुक्रपुद्गलाः अनुप्रविशेयुरिति ५ ॥

अथाध्वस्तध्वस्तयोनिकालमानं जीवसङ्ख्यापरिमाणं चाह-

मू. (९२) बारस चेव मुहुत्ता उविर विद्धंस गच्छई सा उ । जीवाणं परिसंखा लक्खपिहुत्तं च उक्कोसं ।।

षृ. "बारस०" सा पुरुषवीर्यसंयुक्ता योनिर्द्धादशैव मुहूर्त्तान् यावदध्वस्ता भवति, तथा 'उविर'न्ति द्वादशमुहूर्त्तानन्तरं सा योनिर्विध्वंसं गच्छति प्राप्नोतीत्वर्थः, अयमाशयः—ऋत्वन्ते स्त्रीणां नरोपभोगेन द्वादशमुहूर्त्त मध्य एव गर्भभावः तदनन्तरं वीर्यविनाशात् गर्भाभाव इति, तथा मनुष्यगर्भे जीवानां—गर्भजजन्तूनां परिसङ्खया—मानं लक्षपृथक्त्वमुत्कृष्टतो भवति, सिद्धान्तभाषया पृथक्त्वं द्विप्रभृतिरा नवभ्यः सङ्खया कथ्यते इति ॥

मू. (९३) पणपन्नाय परेणं जोणी पमिलायए महिलियाणं । पणसत्तरिइ परओ पाएण पुमं भवेऽबीओ ।।

वृ. अध कियदभ्यो वर्षेभ्यः पुनरूध्वं गर्भं स्त्रियो न धारयन्ति पुमांश्चाबीजो भवति इति प्रसङ्गतो निरूपयितुमाह— ''पणप०'' महिलानां—स्त्रीणां प्रायः प्रवाहेण 'पणपन्नाय'ति पश्चपश्चा- शदवर्षेभ्यः 'परेणं'ति ऊर्ध्वं योनि प्रम्लायति—गर्भधारणसमर्था न भवतीत्यर्थः, भावार्थोऽयं निशीधोक्तः—यथा ''इत्थीए जाव पणपन्ना वासा न पूरंति ताव अमिलाया जोणी—आर्त्तवं स्यात् गर्भं च गृह्वातीत्यर्थः 'पणपन्नवासाए पुण कस्सवि आर्तवं भवति न पुण गट्मं गिण्हइ, पणपन्नाए परओ नो अत्तवं नो गट्मं गिण्हइ'' इति, तथा चोक्तं स्थानाङ्गटीकायाम्—

11 9 11 ''मासि मासि रजः स्त्रीणामजस्नं श्रवति त्र्यहम् । वत्सरात् द्वादशादृष्ट्वं, याति पञ्चाशतः क्षयम् ।।

॥२॥ पूर्णषोडशवर्षा स्त्री, पूर्णविशेन संगता।

शुद्धे गर्भाशये १, मार्गे २, रक्ते ३ शुक्रे ४ ८निले ५ हृदि ६ ॥

॥ ३ ॥ वीर्यवन्तं सुतं सूते, ततो न्यूनाब्दयोः पुनः । रोग्यल्पायुरधन्यो वा, गर्भो भवति नैव वा ॥

-शुद्धे-निर्दोषे गर्भाशयादिषट्के इत्यर्थः । तथा च -

॥ ४॥ "ऋतुस्तु द्वादश निशाः, पूर्वास्तिम्रोऽत्र निन्दिताः । एकादशी च युग्मासु, स्यासुत्रोऽन्यासु कन्यका ॥ ॥ ५ ॥ पद्मं सङ्कोचमायाति, दिनेऽतीते तथा यथा ।

ऋतावतीते योनिः सा, शुक्रं नैव प्रतीच्छति ।।

॥ ६॥ मासेनोपचितं रक्तं, धमनीभ्यामृतौ पुनः।

ईषत् कृष्णं विगन्धं च, वायुर्योनिमुखातुदेत्।।

तथा चाविध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजं १ अविध्वस्ता योनिर्विध्वस्तं बीजं २ विध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजं ३ विध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजं ४ चतुर्षु भङ्गेषु आद्ये भङ्ग एवोरफ्तेरवकाशः, न शेषेषु त्रिष्वित, तत्र पश्चपञ्चाशिका नारी विध्वस्तयोनि, सप्तसप्तितिकः पुमानिति, ''द्वादश मुहूर्त्तान् यावद् बीजं न विध्वस्तं स्यात्तत ऊर्ध्वं विध्वस्त'' मिति द्वितीयाङ्गवृत्ताविति । तथा पुमान्-पुरुषः प्राय पञ्चसप्ततिवर्षेभ्यः परत ऊर्ध्वमबीजो भवेत्, गर्भाधानयोग्यबीजविवर्जित इत्यर्थः ।।

कियद्रमाणायुषामेतन्मानं द्रष्टव्यमित्याह-

मू. (१४) वाससयाउयमेयं परेण जा होइ पुव्वकोडीओ। तस्सद्धे अमिलाया सव्वाउयवीसभागो य।।

षृ. ''वास'' ० वर्षशतायुषामिदंयुगीनानामेतद् गर्भधारणादिकालमानमुक्तं, परेण तर्हि का वार्त्तेत्वाह—'परे०' वर्षशतात् परतो वर्षद्वयं त्रयं चतुष्टयं चेत्यादि यावन्महाविदेहमनुष्याणां या पूर्वकोटि सर्वायुषि स्यात् तस्य—सर्वायुषोऽधं तदधं यावदम्लाना—गर्भधारणयोग्या स्त्रीणां योनिः— द्रष्टव्या, ततोऽपि परतः सकृद्धसवधर्माणोऽम्लानयोनयोऽवस्थितयौवनत्वात्, पुंसां पुनः सर्वस्यापि पूर्वकोटिपर्यन्तस्यायुषोऽन्त्यो विंशतिमो भागोऽबीज इति ॥

अथ कियन्तः पुनर्जीवाः एकस्याः स्त्रियाः गर्भे एकहेलयैवोत्पद्यन्ते, कियतां च पितृणां एकः पुत्रो भवति इत्याह—

मू. (९५) रत्तुकडा उ इत्थी लक्खपुहृत्तं च बारसमुहृता। पिअसंख सयपृहृतं बारसवासा उ गब्भस्स।।

षृ. "रतुंं' अत्रान्यत्राप्यार्षत्वाद् विभक्तीनां वैचित्र्यं ज्ञातव्यमिति, मासान्ते त्रीणि दिनानि यावत् स्त्राणां यित्ररन्तरमजश्चं श्रवति तदत्र रक्तमुच्यते, तेन रक्तेन–रुधिरेण उत्कटायाः पुरुषवीर्ययुक्तयोन्याश्च एकस्याः स्त्रियाः गर्मे जघन्यतः एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कृष्टतस्तु 'लक्ख-पुहुत्तं'ति लक्षपृथक्तं नवलक्षगर्भजजीवा उत्पद्यन्ते इत्यर्थः, निष्यतं च प्रायः एको द्वौ वाऽऽगच्छतः, शोषास्त्वल्पजीवितत्वात्तत्रैव प्रियन्ते, एको द्वौ वेत्युक्तं व्यवहारापेक्षया निश्चयापेक्षया तुततोऽधिकं न्यूनं वा भवतीति द्रष्टव्यमिति, चशब्दात् स्त्रियाः संसक्तायां योनौ द्वीन्द्रिया जीवा जघन्यतः एको द्वौ वा त्रयो वोत्कृष्टतो नवलक्षप्रमाणा उत्पद्यन्ते।

तप्तायःशलाकान्यायेन पुरुषसंयोगे तेषां जीवानां विनाशो भवति, स्त्रीपुरुषमैथुने मिथ्या-दृष्टयः अन्तर्मुहूर्त्तायुषः अपर्याप्तावस्थाकालकारिणः नवप्राणधारकाः नारकदेवयुगलवर्जितशेष-जीवस्थानगमनशीलाः नारकदेवयुगलाग्निवायुवर्जितशेषजीवस्थानागमनस्वभावाः मुहूर्त्तपृथक्त-कायस्थितिकाः असङ्खयेयाः संमूर्च्छिममनुष्या उत्पद्यन्ते चेति, तथा 'बारसमुहुत्त'ति पुरुषवीर्यस्य कालमानं द्वादश मुहूर्त्तानि, एतावस्कालमेव शुक्रशोणिते अविध्वस्तयोनिके भवत इति, 'पिअ'ति पितृणां पितृसंख्या तस्याः शतपृथकत्वं भवति, अयमाशयः — उत्कृष्टतो नवानां पितृशतानामेकः पुत्रो जायते, एतदुक्तं भवति — कस्याश्चिद् ६ढसंहननायाः कामातुरायाश्च योषितो वदा द्वादश-मुहूर्त्तमध्ये उत्कृष्टतो नविभ पुरुषशतैः सह सङ्गमो भवति तदा तदवीजे यः पुत्रो भवति स नवानां पितृशतानां पुत्रो भवतिति, उपलक्षणत्वात्तिरश्चां च बीजं द्वादशमुहूर्त्तान् यावद्योनिभूतं भवति, ततश्च गवादीनां शतपृथक्त्वस्यापि बीजं गवादियोनिप्रविष्टं बीजमेव, तत्र च बीजसमुदाये एको जीव उत्पद्यमानस्तेषां सर्वेषां बीजस्वामिनामुत्कर्षतः पुत्रो भवति, मत्त्यादीनामेक संयोगेऽपि शतसहस्रपृथक्तंव गर्भे उत्पद्यते चेत्येकस्मित्रपि गर्भे लक्षपृथक्तंव पुत्राणां स्यादिति ।

ननु देवानां शुक्रपुद्गलाः किं सन्ति उत न ? उच्यते, सन्त्येव, परं ते वैक्रियशरीरान्तर्गता इति न गर्भाधानहेतव इति, यदुक्तं श्रीप्रज्ञापनायां—"अस्यि णं भंते! तेसिं देवाणं सुक्रपुग्गला हंता अस्यि, ते णं भंते! तेसिं अच्छराणं कीसत्ताए भुद्रो २ परिणमंति ?, गो०! सोइंदियत्ताए चिंखदियत्ताए घाणिदियत्ताए रसणिदियत्ताए फासिंदियत्ताए इष्टताए कंतत्ताए मणुन्नताए मणामताए सुभगताए सोहग्गलवजोव्वणगुणलावन्नताए एयासिं भुद्रो २ परणमंति जाव तत्य णं जे ते मनपरियारगा देवा तेसिं इच्छामने समुप्पज्ञइ इच्छामो णं अच्छराहिं सिद्धिं भनपरियारणं करेतए, तओ णं तेहिं देविहिं मणसीकए समाणे खिप्पामेव ताओ अच्छराओ तत्थगयाओ चेव समाणीओ अनुत्तराइं उद्यावयाईं मणाईं पहारेमाणीओ रचिहंति, तओ णं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सिद्धें मनपरियारणं करेति सेसं निरवसेसं तं चेव जाव भुद्रो २ परिणमंति'ति ॥ अध कियन्तं कालं भवस्थित्या जीवो गर्भे वसतीत्याह—

''बारसo'' गर्भस्य स्थितिः द्वादशवर्षप्रमाणा भवति, एतदुक्तं भवति—कोऽपि पापकारी वातिपत्तादिद्षिते देवादिस्तम्भिते वा गर्भे द्वादश संवत्सराणि निरंतरं तिष्ठति उत्कृष्टतः, जघन्य-तस्वन्तर्मृहूर्तमेव तिष्ठति, भवस्थित्या गर्भाऽधिकारात् 'उदगगब्भे णं भंते! कालओ केवचिरं होइ?, गो०! जहन्नेणं एकं समयं उक्कोरेणं छमासा' उदकगर्भः—कालान्तरे वृष्टिहेतुपुद्गलपरिणामः तस्य समयानन्तरं षण्मासानन्तरं च वर्षणात्, अयं च मार्गशीर्पादिषुवैशाखान्तेषु सन्ध्यारागा-दिलिङ्गो भवतीति, तुशब्दात् मनुष्यितरश्चां कायस्थिति चतुर्विशतिवर्षप्रमाणा अवगन्तव्या, यथा कोऽपि स्त्रीकाये द्वादश वर्षाणि जीवित्वा तदन्ते च मृत्वा तथाविधकर्मवशात् तत्रैव गर्भस्थिते कलेवरे समुत्यद्य पुनः द्वादश वर्षाणि जीवतीत्येवं चतुर्विशतिर्वर्षाण्युत्कर्षतो गर्भे जन्तुरवतिष्ठते, केविदाहुः—द्वादश वर्षाणि स्थित्वा पुनःतत्रैवान्यजीवस्तत्करीरे उत्पद्यते तावतस्थितिरिति ॥

अथ कुक्षौ पुरुषादयः कुत्र परिवसन्तीत्याह-

मू. (९६) दाहिणकुच्छी पुरिसस्स होइ वामा उ इत्यीयाए य । उभयंतरं नपुंसे तिरिए अड्डेव वरिसाइं।।

मृ. 'दाहिणे'ति पुरुषस्य दक्षिणकृक्षिः स्यात् दक्षिणकुक्षौ वसन् जीवः पुरुषः स्यादिति भावः १, स्त्रिया वामकुक्षिः स्यात्,वामकुक्षौ वसन् जीवःस्त्री भवतीति भावः २,नपुंसकःउभयान्तरं स्यात्, कुक्षिमध्यभागे दसन् जीवो नपुंसको जायते इति भावः ३, स्त्रीपुरुषनपुंसकलक्षणानि यथा−

॥ ९ ॥ ''योनिर्मृदुत्वमस्थैर्यं, मुग्धता चलता स्तनौ । पुंस्कामितेति लिङ्गानि, सप्त स्त्रीत्वे प्रचक्षते ॥ ॥२॥ मेहनं खरता दाद्यं, शौण्डीयं श्मश्रु धृष्टता ।

स्त्रीकामितेति लिङ्गानि, सप्त पुंस्त्वे प्रचक्षते ॥

॥ ३॥ स्तनादिश्मश्रुकेशादिभावाभावसमन्वितम्।

नपुंसकं बुधाः प्राहुर्मोहानलसुदीपितम् ॥ इति ॥

अथ तिरश्चां गर्भे भवस्थितिमाह-'तिरिए'त्ति तिरश्चां गर्भस्थितिरुकृष्टतः अष्टौ वर्षाणि, ततः परं विपत्ति प्रसवो वेति, जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्तमाना भवस्थितिरिति ॥

अथ जीवो गर्भे उत्पद्यमानः किमाहारमाहारयति ततश्च किंस्वरूपो भवतीत्याह-

मू. (१७) इमो खलु जीवो अम्मापिउसंयोगे माउउयं पिउसुक्कं तं तदु भयसंसर्ह कलुसं किब्बिसं तप्पढमयाए आहारं आहारित्ता गब्भत्ताए वक्कमइ ।

षृ. 'इमो खलु' ति यावत् 'वक्षमइ' ति मुकलं, अयं जीवः खलु इति निश्चितं मातापित्रोः संयोगे 'माउउयं' ति मातुरोजो—जनन्या आर्त्तबं शोणितमित्यर्थः 'पिउसुक्कंति' पितुः शुक्रं, इह यदिति शेषः 'तं' ति तदाहारं तस्य—गर्भव्युक्तमणस्य प्रथमता तत्यथमता तया 'आहारित' ति तैजसकार्मणशरीराभ्यां भुक्त्वा गर्भतया—गर्भत्वेन 'वक्षमइ' ति व्युक्तामति उत्पद्यत इत्यर्थः, किंभूत-माहारं ? — 'दुभयसंसिट्टं' ति तयोः—शुक्रशोणितयोरुभयं तद्य तत् संसृष्टं च—मिलितं च तदुभयसंसृष्टं, कलुषं—मिलनं 'किब्बिसं' ति कर्बुरमिति, ततः केन क्रमेण शरीरं निष्पाद्यते इत्याह—

मू. (९८) सत्ताहं कललं होइ, सत्ताहं होइ अब्बुयं । अब्बुया जायए पेसी, पेसीओ य घनं भवे ।।

षृ. 'सत्ताह'मित्यादि० यावद् भवेत्तिपद्यं, सप्ताहोरात्राणि यावत् शुक्रशोणितसमुदायमात्रं कललं भवति १ ततः सप्ताहोरात्राणि अर्बुदो भवति, ते एव शुक्रशोमिते किश्चित् स्त्यानीभूतत्वं प्रतिपद्येते इति २ ततोऽपि चार्बुदात् पेसी—मांसखण्डरूपा भवति ३ ततश्चानन्तरं साधनं—समचतुरस्रं मांसखण्डं भवति ॥

मू. (१९) तो पढ़मे मासे किरसूणं पलं जायइ १ बीए मासे पेसी संजायए घणा २ तइए मासे माउए दोहलं जणइ ३ चउत्थे मासे माउए अंगाई पीणेइ ४ पंचमे मासे पंच पिंडियाओ पाणि पायं सिरं चेव निव्वत्तेइ ५ छड्ठे मासे पित्तसोणियं उवचिणोइ ६ सत्तमे मासे सत्त सिरासयाइं ७०० पंच पेसीसयाइं ५०० नवधमणीओ नवनउइं च रोमकूवसयसहस्साइं निवत्तेइ ९९००००० विणा केसमंसुणा सह केसमंसुणा अद्धुष्टाओ रोमकूवकोडीओ निव्वत्तेइ ३५०००००, अड्ठमे मासे वित्तीकप्पो हवड ।

षृ. 'तो पढमे०' ततः—इह च तच्छुक्रशोणितमुत्तरोत्तरपरिणाममासादयत् प्रथमे मासे कर्षोनं पलं जायते, पञ्चगुञ्जाभिर्माषः षोडशभिर्माषेः कर्षः चतुर्भः कर्षेः पलिमिति वचनात् त्रयः कर्षाः स्युरिति भावः १ द्वितीये तु मासे मांसपेसी घना—घनस्वरूपा भवति, समचतुरस्र मांसखण्डं जायत इत्यर्थः २ तृतीये मासे तु मातुर्दोहदं जनयतीत्यर्थः ३ चतुर्थे मा मातुरङ्गानि प्रीणयति—पृष्टानि करोतीत्यर्थः ४ पञ्चमे मासे पाणिद्वयपादद्वयमस्तकरूपाः पञ्च पिण्डिकाः-पञ्चाङ्करान् निर्वर्त्तयति निष्पादयतीत्यर्थः ५।

षष्ठे मासे पीयते जलमनेनेति पित्तं पित्तं च शोणितं च पित्तशोणितं तत् उपचिनोति-पुष्टं

करोतीत्यर्थः ६।

सप्तमे मासे सप्त निराशतानि ७०० पश्च पेशीशतानि ५०० नव धमन्यो—नव नाड्यः ९ नवनवितं रोमकूपशतसहस्राणि निर्वर्तयित, रोम्णां—तनुरुहाणां कूपा इव कूपा रोमकूपा रोमरन्धा-णीत्यर्थः तेषां नवनवित्तलक्षा इति केशश्मश्रुभिर्विना, तत्र केशाः—शिरोजाः श्मश्रूणि—कूर्यकेशाः ९९००००, केशश्मश्रुभिः सह 'अद्धुड्ठाउ'ित सार्धा तिस्रो रोमकूपकोटीः निर्वर्तयतीित ३५०००००, अष्टमे मासे तु शरीरमाश्रित्य 'वित्तीकप्पे'ित निष्पन्नप्रायो जीवो मवतीित ।

अत्राधिकारे इन्द्रभृति जनोपकाराय त्रैशलेयं सर्वज्ञं सर्वभूतदयैकरसं प्रश्नयति यथा— भू. (२०) जीवस्स णं भंते! गड्भगयस्स समाणस्स अत्थि उच्चारेड् वा पासवणेड् वा खेलेड् वा सिंघाणेड् वावंतेड् वा पित्तेड् वा सुक्केड् वा सोणिएड् वा?, नो इणडे समडे, से केणडेणं भंते! एवं वृद्यङ्ग जीवस्स णं गड्भगयस्स समाणस्स नित्थे उच्चारेड् वा जाव सोणिएड् वा?

गोयमा! जीवे णं गब्भगए समाणे जं आहारं आहारेइ तं चिणाइ सोइंदियत्ताए १ चक्खुरिंदिय-ताए २ घाणिंदियत्ताए ३ जिब्भिंदियत्ताए ४ फासिंदियत्ताए ५ अड्ठिअड्टिमिंजकेसमंसुरोमनहताए, से एएणं अड्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ जीवस्स णं गब्भगयस्स समाणस्स नत्थि उच्चारेइ वा जाव सोणिएइ वा।

षृ. 'जीवस्स णं भंते!' इत्यादि, हे भदन्त! जीवस्य—जन्तोः 'णं' वाक्यालङ्कारे गर्भगतस्य—गर्भत्वं प्राप्तस्य 'समाणस्स' ति सतः अस्ति—विद्यते वर्त्तत इत्यर्थ उच्चारो—विद्या 'इ' इति उपप्रदर्शने अलङ्कारे पूरणे वा वेति विकल्पार्थे 'प्रश्रवणं' मूत्रं 'खेलो' निष्ठीवनं 'सिंघाणे' ति नासिकाश्लेष्म 'वंतं' वमनं 'पित्तं' मायुः शुक्रं—वीर्यं शोणितं—रुधिरं 'सुक्के इ वा सोणिए इ वा' इति पदद्वयं भगवत्यादिसूत्रे न ६श्यते आगमज्ञैर्विचार्यमिति, 'नो इणड्डे समड्डे' नो—नैव 'इणड्डे' ति अयमनन्तरोक्तत्वेन प्रत्यक्षोऽर्थो—भावः समर्थो—बलवान्, वक्ष्यमाणदूषणमुद्गरप्रहारजर्जरितत्वात्, गौतमस्वामी प्राह—

'से केणडेणं'ति अथ केन कारणेन इत्यर्थः हे भदन्त ! एवं प्रोच्यते-जीवस्य गर्भगतस्य सतो नास्ति उच्चारो यावच्छोणितमिति ?, भगवान् प्राह-हे गौतम ! जीवः णं वाक्यालङ्कारे गर्भगतः सन् यदाहारमाहारयित तदाहारं श्रोत्रेन्द्रियतया १ चक्षुरिन्द्रियतया २ घ्राणेन्द्रियतया ३ जिह्वेन्द्रियतया ४ स्पर्शनेन्द्रियतया ५ चिनोति पुष्टिभावं नयतीत्यर्थः ।

इन्द्रियाणि द्वैधानि—पुद्गललपाणि द्रव्येन्द्रियाणि १ लब्ध्युपयोगरूपाणि तु मावेन्द्रियाणि २, पुनर्निर्वृत्युपकरणलक्षणभेदात् द्वैधानि द्रव्येन्द्रियाणि, तत्र निर्वृतिर्द्विधा—अन्तो १ बहिश्च २, तत्र अन्तः—श्रोत्रेन्दियस्य अन्तः—मध्ये नेत्रगोचरातीता केवलिद्दष्टा कदम्बकुसुमाकारा देहावयवरूपा काचित्रिर्वृत्तिरस्ति या शब्दग्रहणोपकारे वर्तते १ चक्षुरिन्द्रियास्यान्तः—मध्ये कवलिगण्या धान्यमसूराकारा देहावयवरूपा काचित्रिर्वृत्तिरस्ति या रूपग्रहणोपकारे वर्तते ३ रसनेन्द्रियस्य अन्तः—मध्ये जिनगम्या क्षुरप्राकारा देहावयवरूपा काचित्रिर्वृत्तिरस्ति या गन्धग्रहणोपकारे वर्तते ४ स्पर्शनिन्द्रियस्य अन्तः—मध्ये केवलिद्दष्टा देहाकारा काचित्रिर्वृत्तिरस्ति या स्पर्शग्रहणोपकारे वर्तते ५–१।

बहिर्निर्वृत्तिस्तु या सर्वेषामपि श्रोत्रादीनां कर्णशष्कुलिकादिका ६१यते सैव मन्तव्या २,

उपकरणेन्द्रियं तु तेषामेव कदम्बगोलकाकारादीनां खङ्गस्य छेदनशक्तिरिव ज्वलनस्य दहन-शक्तिरिव वा या स्वकीय२विषयग्रहणशक्तिस्तत्त्वरूपं द्रष्टव्यम् २, तथा ज्ञानावर्णकर्मक्षयोप-शमाञ्जीवस्य शब्दादिग्रहणशक्तिरूपं लब्धिभावेन्द्रियं १ यत्तु शब्दादीनामेव ग्रहणपरिणामलक्षणं तदुपयोग भावेन्द्रियमिति २ ।

तत्र यानि द्रव्येन्द्रियाणि तानि जीवानामिन्द्रियपर्याप्तौ सत्यां भवन्ति, यानि च भावेन्द्रियाणि तानि संसारिणां सर्वावस्थाभावीनीति, तथा नयनस्य विषयोऽप्रकाशकवस्तु पर्वताद्याश्रित्या-त्माङ्गुलेन सातिरेकं योजनलक्षं स्यात्, प्रकाशके त्वादित्यचन्द्रादावधिकमपि विषयपरिमाणं स्यात्, नात्र विषये नियमः कोऽपि निर्दिद्योऽस्ति सिद्धान्ते, यतः पुष्करवरद्वीपार्द्धे मानुषोत्तरपर्वतसमीपे कर्कसङ्क्रान्तौ मनुष्याः प्रमाणाङ्गुलभवैः सातिरेकैरेकविंशतियोजनलक्षैः व्यवस्थितं रविं पश्यन्तः प्रोच्यन्ते शास्त्रान्तरे इति ।

जघन्यतस्वत्यासन्नरजोमलादेरग्रहणादङ्गुलसङ्घयेयभागात् परतः स्थितं वस्तु चक्षुषो विषयः १ श्रोत्रस्य द्वादश योजनान्युत्कृष्टविषयो मेघगर्जितादौ २ ध्राणरसनस्पर्शनानानां तूत्कृष्टं नव योजनानि ३-४-५ जघन्यतस्तु चतुर्णामप्यङ्गुलासङ्घयेयभागादागतं गन्धादिकं विषयः, मनसस्तु केवलज्ञानस्येव समस्तमूर्त्तामूर्त्तवस्तुविषयत्वेन क्षेत्रतो नास्ति विषयप्रमाणं मनसोऽप्राप्य-कारित्वादिति, विषयप्रमाणं चात्र इन्द्रियविचारे आत्माङ्गुलेनैव ज्ञेयमिति, तथा-

'अड्डिअड्डिमिंजo'अस्थ्यस्थिमिञ्जकेशश्मश्रुरोमनखतया चिनोतीति, तत्रास्थि-हड्डं अस्थिमिंजा-अस्थिमध्यावयवः केशाः-शिरोजाः श्मश्रूणि-कूर्चकेशाः रोमाणि-कक्षादिकेशा इति, 'से' अथ अनेनार्थेन-अनेनकारणेन हे गौतम! हे इन्द्रमते! एवं-पूर्वोक्तं प्रोच्यते-प्रकर्षेण प्रतिपाद्यते जीवस्य गर्भगतस्य सतो नास्ति उद्यारो यावच्छोणितिमत ॥ पुनर्गीतमो ज्ञातनन्दनं प्रश्नयति-

मू. (२१) जीवे मं भंते ! गब्भगए समाणे पहू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए ?, नो इणडे समडे, से केणडेणं भंते ! एवं वुद्धइ ? –गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे नो पहू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए ?

गोयमा! जीवे णं गब्भगए समाणे सव्वओ आहारेइ सव्वओ परिणामेइ सव्वओ ऊससेइ सव्वओ नीससेइ अभिक्खणं आहारेइ अभिक्खणं परिणामेइ अभिक्खणं ऊससेइ अभि० नीससेइ आहच्च आहारेइ आहच्च परिणामेइ आहच्च ऊससेइ आ० नीससइ, माउजीवरसहरणी पुत्तजीव-रसहरणी माउजीवपडिबद्धा पुत्तजीवं फुडा तम्हा आहारेइ तम्हा परिणामेइ अवरावि णं पुत्तजीव-पडिबद्धा माउजीवफुडा तम्हा चिणाइ, से एएणं अड्रेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–जीवे णं गब्भगए समाणे नो पहू मुहेणं कावलियं आहरं आहरित्तए।

वृ. 'जीवे णं०' हे भदन्त! हे भवान्त! हे दयैकरसकृतवागवृष्टयाद्रीकृतभव्यहृदयवसुंधर जीवो गर्भगतः सन् प्रभुः—समर्थ मुखेन—वक्त्रेण कवलैर्भवं काविलकं आहारं—अशनादिकं 'आहारित्तए'ति आहर्तु अदनं कर्तुमिति ?, आह जगदीश्वरः—हे गौतम! नायमर्थः समर्थः, श्रीगौतमः प्राह—'से' अथ केनार्थेन एवं प्रोच्यते ?, विश्वैकवत्सलो वीरः प्राह—हे गौतम! जीवो गर्भगतः सन् 'सव्यउ'ति सर्वात्मना—सर्वप्रकारेण आहारयित, आहारतया गृह्णातीत्यर्थः, सर्वात्मना

परिणामयति, शरीरादितया गृह्णातीत्यर्थः, सर्वतः – सर्वात्मना 'उच्छ्वसिति' सर्वप्रकारेण ऊर्ध्वश्वासं गृह्णातीत्यर्थः, सर्वतः – सर्वात्मना निश्वसिति – श्वासमोक्षणं करोतीत्यर्थः, अभीक्ष्णं – पुनः पुनः आहारयति अभीक्ष्णं परिणामयति अभीक्ष्णमुच्छ्वसिति अभीक्ष्णं निश्वसिति, 'आहन्च'त्ति कदाचि-दाहारयति कदाचित्राहारयति तथास्वभावत्वात् कदाचित् परिणामयति कदाचित्र परिणामयति कदाचित्र विद्याचित्र विद्य विद्याचित्र विद्याचित्र विद्याचित्र विद्याचित्र विद्याचित्र विद्याचित्र विद्याचित्र व

अथ कथं सर्वतः आहारयतीत्याह-'माउजीवर' ० रसः हियते-आदीयते यया सा रसहरणी नाभिनालमित्यर्थः मातृजीवस्य रसहरणी मातृजीवरसहरणी, किमित्याह-पुत्रजीवरसहरणी, पुत्रस्य रसोपादाने कारणत्वात्, कथमेवमित्याह-मातृजीवप्रतिबद्धा सती सा यतः पुत्रजीवं 'फुडा' इति पुत्रजीवं स्पृष्टवती, इह प्रतिबद्धता-गाढसम्बन्धस्तदंशत्वात् स्पृष्टता च-सम्बन्धमात्रं अतदंशत्वात्, अथवा मातृजीवरसहरणी १ पुत्रजीवरसहरणी २ चेति द्वे नाडयी स्तः, तयोश्चाद्या मातृजीवप्रतिबद्धा पुत्रजीवं स्पृष्टेति, 'तम्हा' इति यस्मादेवं तस्मान्मातृजीव्रतिबद्धया रसहरण्या पुत्रजीवस्पर्शनात् आहारयति तस्मात् परिणमयति, 'अवरावि य' ति पुत्रजीवरसहरण्यपि च पुत्रजीवप्रतिबद्धा सती मातृजीवं स्पृष्टवती, यस्मादेवं तस्माद्धिनोति शरीरं, उक्तश्च तन्त्रान्तरे-

ll 9 || ''पुत्रस्य नाभौ मातुश्च, हृदि नाडी निबध्यते । ययाऽसौ पुष्टिमाप्नोति, केदार इव कुल्यया ॥''

इति, 'से' अय अनेनार्थेन हे गौतम ! एवं प्रोच्यते-जीवो गर्भगतः सन् न प्रभुः-न समर्थः मुखेन कावलिकं आहारमाहर्त्तुमिति ॥ पुनः गौतमो वीरं प्रश्नयति-

मू. (२२) जीवे णं गब्भगए समाणे किमाहारं आहारेइ?, गोयमा जं से माया नाणाविहाओ नव रसविगइओ तित्तकडुयकसायंबिलमहुराइं दव्वाइं आहारेइ तओ एगदेसेणं ओयमाहारेइ, तस्स फलबिंटसरिसा उप्पलनालोवमा भवइ नाभिरसहरणी जणणीए सया इं नाभीए पडिबद्धा नाभीए तीए गब्भो ओयं आइयइ अण्हयंतीए ओयाए तीए गब्भो विवहृइ जाव जाउति।

वृ. जीवो गर्भगतः सन् किमाहारमाहारयंति ? , गौतम ! 'जं से'ति या से-तस्य गर्भसत्वस्य माता गर्भधारिणी 'नाणाव' नानाविधाः—विविधप्रकाराः रसरूपा रसप्रधाना वा विकृतयो—दुग्धाद्या रसिवकारास्ताः आहारयित, तथा यानि तिक्तकटुककषायाम्लमधुराणि द्रव्याणि चाहारयित, तत्र तिक्तानि—निम्बर्भटादीनि कटुकानि—आर्द्रकतीमनादीनि कषायाणि—वञ्जकादीनि आम्लानि—तक्रारनालादीनि मधुराणि—क्षीरदध्यादीनि ५ ।

'तओ एगदेसेणं'ति तासां-रसिवकृत्यादीनामेकदेशस्तेन सह 'ओयं'ति ओजसं-शुक्रशोणितसमुदायरूपं आहारयित, तद्वा त्वगेकदेशेनमातुराहारिमश्रं ओजः-शोणितं आहारयित कथिमत्याह 'तस्सफल' इत्यादियावत् 'जाउ'त्ति, तस्य-गर्बजीवस्य 'जणणीए'त्तिजनन्या-मातुः नाभिरसहरणी- नाभिनालमस्ति, किम्भूता ?-फलवृन्तसद्दशी- उत्पलनालोपमाचपुनः किंभूता? - 'पडिबद्धा' गाढलग्ना, क्व? -नाभौ, कथं? -सदा 'इं' इति वाक्यालङ्कारे 'तीए'त्ति तथा 'नाभीए'त्तिजननीनाभिप्रतिबद्धयारसहरण्या 'गब्भोओवं'तिगर्भः-उदरस्थः जन्तुः ओजः-मातुराहारिमश्रं शुक्रशोणितूपं 'आइयइ'त्ति आददाति गृह्णतीति, 'अण्हयंतीए ओयाए तीए'ति तस्यां 'अशश् भोजने' अश्नत्यां यद्धा 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' भुंजानायांभोजनं कुर्वत्यां वा ओजसा-मातुराहारमिश्रेण शुक्रशोणितरूपेण गर्भो विवर्धते-वृद्धिं याति यावञ्जात इति ।

भुजो भुंजजिमजेमकम्माण्हसमाणचमढचट्टा' इतिप्राकृतसूत्रेण भुजधातोः अण्ह इत्यादेश इति । पुनर्गोतमो वीरदेवं प्रश्नयति—

मू. (२३) कइ णं भंते! माउअंगा पन्नता?, गोयमा! तओ माउअंगा पन्नता, तंजहा–मंसे १ सोणिए २ मत्थुलुंगे ३, कइ णं भंते! पिउअंगा पन्नता?, गोयमा! तओ पिउअंगा पन्नता, तंजहा–अडि १ अडिमिजा २ केसमंसुरोमनहा ३।

षृ. 'कइ णं भंते' हे भदन्त ! णं इति वाक्यालङ्कारे कित मातुरङ्कानि आर्तवबहुलानीत्यर्थः प्रज्ञप्तानि ?, जगदीश्वरो जगत्राता जगद्भाविद्याता वीर आह-हे गणधर ! गौतम ! त्रीणि मातुरङ्कानि प्रज्ञप्तानि मया अन्यश्च जगदीश्वरैः, तद्यथा—मांसं-पललं १ शोणितं—रुधिरं २ मत्युलुंगेति—मस्तकभेज्रकं, अन्ये त्वाहुः—मेदःफिष्फिसादि मस्तुलुंगमिति ३ ॥

'कइ णं भंते !' कित हे भदन्त ! पैतृकाङ्गानि शुक्रविकारबहुलानीत्यर्थः प्रज्ञानि ?, हे गौतम ! त्रीणि पैतृकाङ्गानि प्रज्ञातानि, तद्यथा—अस्थि—हडुं ९ अस्थिमिआ—अस्थिमध्यावयवः २ केशश्मश्रुरोमनखाः ३, तत्र केशाः—शिरोजाः श्मश्रूणि—कूर्चकेशाः रोमाणि—कक्षादिकेशाः नखाः—करजा इति, केशादिकं बहुसमानरूपत्वादेकमेव, उभयव्यतिरिक्तानि तु शुक्रशोणितयोः समिवकाररूपत्वात् मातापित्रोः साधारणानीति ॥ गर्भस्थोऽपि किं कश्चिद् जीवो नरकं देवलोकं वा गच्छतीति गौतमो वीरं प्रश्नयति—

मू. (२४) जीवे णं भंते! गब्भगए समाणे नेरइएसु उवविज्ञजा?, गोयमा! अत्येगइए उवविज्ञज्ञा अत्थेगइए णो उवविज्ञज्ञा, से केणड्डेणं भंते! एवं वुच्चइ—जीवे णं गब्भगए समाणे नेरइएसु अत्थेगइए उवविज्ञज्ञा अत्थेगइए नो उवविज्ञज्ञा?

गोयमा! जे णं जीवे गब्भगए समाणे सन्नी पंचिंदिए सव्वाहिं पञ्जतीहिं पञ्जत्तए वीरियलद्धीए विभंगनाणलद्धीए विउव्वियलद्धीए विउव्वियलद्धीपते पराणीयं आगयं सुद्धा निसम्म पएसे निच्छुहड् निच्छुहिता विउव्वियसमुग्धाएणं समोहणङ् समोहणिता चाउरंगिणिं सिन्नं सन्नाहेड् सन्नाहित्ता पराणीएणं सिद्धं संगामं संगामेड ।

से णं जीवे अत्यकामए १ रञ्जकामए २ भोगकामए ३ कामकामए ४ अत्यकंखिए १ रञ्जकंखिए २ भोगकंखिए ३ कामकंखिए ३ कामकंखिए ४ अत्थिपवासिए १ भोग० २ रञ्ज० ३ काम० ४, तिद्यत्ते १ तम्मणे २ तल्लेसे ३ तदण्झविसए ४ तित्तव्यज्झवसाणे ५ तयद्वोवउत्ते ६ तदण्यियकरणे ७ तत्थावणाभाविए ८ एयंसिं च णं (चे) अंतरंसि कालं करिजा नेरइएसु उवविज्ञा; से एएणं अट्टेणं एवं वुद्यइ जीवे णं गब्भगए समाणे नेरइएसु अत्थेगइए उवविज्ञेजा अत्थेगइए नो उवविज्ञेजा गोयमा ! ।

वृ. 'जीवे णं गट्मग०' हे भदन्त ! जीवो गर्भगतः सन् मृत्वेति शेषः नरकेषु उत्पद्यते ?, हे गौतम ! अस्ति—विद्यते 'एमइए'ति एककः कश्चि सगर्वराजादिगर्भरूपः उत्पद्यते अस्त्ययं पक्षः यदुत एककः कश्चित्रोत्पद्यते, 'से' अय केनार्थेन हे भदन्त ! एवं प्रोच्यते—जीवो गर्भगतः सन् नरकेषु उसत्ययं पक्षः यदुत एककः कश्चित्रोत्पद्यते, 'से' अय केनार्थेन हे भदन्त ! एवं प्रोच्यते—जीवो गर्भगतः सन् नरकेषु अस्त्येककः उत्पद्यते अस्त्येकको नोत्पद्यते ?, हे गौतम ! 'जे णं'ति यो

जीवः 'णं' इतिवाक्यालङ्कारे गर्भगतः सन् आहारादिका संज्ञा विद्यतेयस्य स संज्ञी पश्चे न्द्रियाणि— श्रवण १ ध्राण-२ रसन३ चक्षु ४ स्पर्शन ५ लक्षणानि विद्यन्ते यस्य स पश्चेन्द्रियः सर्वाभिरा हारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासभाषामनोलक्षणाभिः षङ्भिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः, मासद्वयोपरिवर्त्तीत्युनुक्त-मपि ज्ञेयं।

यतो मासद्वयमध्यवर्ती मनुष्यो गर्भस्थो नरके देवलोकेऽपि न यातीत्युक्तं भगवत्यामिति, पूर्वभविकवीर्यलब्ध्या पूर्वभविकविभंगज्ञानलब्ध्या विभंगनाणलद्धीएति पदं भगवत्यां नास्ति, पूर्वभविकवैक्रियलब्ध्या वैक्रियलब्धि प्राप्तः सन् यद्वा वीर्यलब्धिकः विभन्नज्ञानलब्धिकः वैक्रियलब्धिकः विभन्नज्ञानलब्धिकः वैक्रियलब्धिकः वैक्रियलब्धिकः वैक्रियलब्धिकः वैक्रियलब्धिकः वैक्रियलब्धिकः विभन्नज्ञान्ति निष्काश्यवि निष्काश्य विष्क्रम्भबाहल्याभ्यां शरीरप्रमाणं आयामतः सङ्गयेययोजनप्रमाणं जीवप्रदेशदण्डं निमृजति, वैक्रियसमुद्घातेन 'समोहणइ'ति समवहन्ति—समवहतोभवति तथाविधपुद्गलग्रहणार्थः, समवहत्य चत्वारि गजाश्वरथपदातिलक्षणानि अङ्गानि विद्यन्ते यस्याः यस्यां वा सा चतुरिङ्गनी तां चतुरिङ्गनीं 'सिन्न'न्ति सेनां कटकमित्यर्थं 'सन्नाहेइ'ति सज्ञां करोतीत्यर्थः सञ्जां कृत्वा परानीकेन सार्धं संग्रामं संग्रामयति—युद्धं करोतीत्यर्थः।

'से णं जीवे'ति णं इति वाक्यालङ्कारे सः—युद्धकर्त्ता जीवः 'अत्यकामए'ति अर्थे – द्रव्ये कामो–वाञ्छामात्रं यस्यासावर्धकामः एवमन्यान्यपि विशेषणानि, नवरं–राज्यं–नृपत्वं २ भोगाः– गन्धरसस्पर्शा ३ कामौ–शब्दरूपे ४ 'अत्थकंखिए'ति काङ्क गृद्धिरासक्तिरित्यर्थः अर्थे–द्रव्ये काङ्क्षा सञ्जाता अस्येति अर्थकाङ्क्षितः १एवमन्यानि राज्यकाङ्क्षितः २ भोगकाङ्कितः ३ कामकाङ्कितः ४ ।

'अत्यपिवासिए'त्ति पिपासेव पिपासा–प्राप्तेऽप्यर्थेऽतृप्तिः अर्थे अर्थस्य वा पिपासा सञ्जाता अस्येति अर्थपिपासितः १ एवमन्यानि राज्यपिपासितः २ भोगपिपासितः ३ कामपिपासितः ४

'तिम्रते'ति तत्र—अर्धराज्यभोगकामे चित्तं—सामान्योपयोगरूपं यस्यसौ तिम्रतः १ 'तम्मणे'ति तत्रैव—अर्थादौ मनः—विशेषोपयोगरूपं यस्यस तन्मनाः २ 'तल्लेसे'ति तत्रैव—अर्थादौ तन्नेव्यान्यस्य स तन्मनाः २ 'तल्लेसे'ति तत्रैव—अर्थादौ तेश्रया—आस्मपरिणामविशेषः यस्यासौ तल्लेश्रयः ३ 'तदज्ज्ञवसिए'ति इह अध्यवसायः—अध्यवसितं तत्र तिम्रते त्याद्यासेताः ४ 'तित्रव्यज्ज्ञवसाणे'तितस्मिन्नेव—अर्थादौ तीत्रं—आरम्भकालादारभ्य प्रकर्षयायि अध्यवसानं—प्रयत्नविशेषलक्षणं यस्य स तत्तीव्राध्यवसानः ५ 'तदङ्गोवउत्ते'ति तदर्थं—अर्थादिनिमित्तं उपयुक्तः—अवहितः तदर्थोपयुक्तः ६ 'तदप्यियकरणे'ति तस्मिन्नेव—अर्थादौ अर्पितानि—आहितानि करणानि—इन्द्रियाणि कृतकारितानुमतिरूपाणि वा येन स तदर्पितकरणः ७ 'तन्न्यावणाभाविए'ति असकृदनादौ संसारे तदभावनया—अर्थादिसंस्कारेण भावितो यः स तद्मावनाभावितः ८।

'एयंसि'ति एतस्मिन् 'णं' इति वाक्यालङ्कारे चेत्—यदि 'अन्तरंसि'ति सङ्ग्रामकरणावसरे कालं—मरणं कुर्यात् तदा नरकेषु गाढदुःखाकुलेषु उत्पद्यते, नरभवं त्यक्त्वा महारम्भी मिथ्या६ष्टि नरके यातीत्यर्थः, 'से' अथ एतेनार्थेनैवं प्रोच्यते—हे गौतम! जीवो गर्भगतः सन् नरकेषु अस्ति एककः कश्चिद्रत्यद्यते अस्ति एककः कश्चित्रोत्यद्यते ॥ पुनर्गोतमो वीरं प्रश्नयतीत्याह— मू. (२५) जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे देवलोगेसु उवविज्ञज्ञा ?, गो० ! अत्थेगइए उव० अत्थेग० नो उव०, से केणडेणं भंते ! एवं वुद्धइ—अत्थेगइए उ० अत्थेगइए नो उ० ?, गोयमा ! जे णं जीवे गब्भगए समाणे सन्नी पंचिंदिए सव्वाहिं पञ्जत्तीहिं पञ्जत्तए वेउव्वियलद्धीए ओहिनाणलद्धीए तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवण्ण सुद्धा निसम्म तओ से भवइ तिव्वसंवेगसंजायसद्धे तिव्वधम्मानुरायरत्ते ।

से णं जीवे धम्मकामए १ पुण्णकामए २ सग्गकामए ३ मुक्खकामए ४ धम्मकंखिए १ पुण्णकंखिए २ सग्गकंखिए ३ मुक्खकंखिए ४ धम्मपिवासिए १ पुण्णपिवासिए २ सग्गपिवासिए ३ मुक्खपिवासिए ४ तक्किते १ तम्मणे २ तल्लेसे ३ तदज्झवसिए ४ तत्तिव्यज्झवसाणे ५ तदिष्यः करणे ६ तयहोवउत्ते ७ सब्मावणाभाविए ८ एयंसि णं(चे) अंतरंसि कालं करिजा देवलोएसु उववज्जिजा, से एएणं अहेणं गो०! एवं वुस्चइ अत्थेगइए उवविज्ञज्ञा अत्थेगइए नो उवविज्ञज्ञा

षृ. 'जीवेण भंते! गढ्मगए देवo' जीवो हे भदन्त! गर्भगतः सन् मृत्वेति शेषः देवलोकेषु उत्पद्यते?, हे गौतम! अस्ति एककः कश्चित् उत्पद्यते अस्येककः कश्चित्रोत्पद्यते, 'से' अध् केनार्थेन हे भदन्त! एवं प्रोच्यते—कश्चिदुत्पद्यते कश्चित्रोत्पद्यते?, हे गौतम! यो जीवो गर्भगतः सन् संज्ञी पश्चेन्द्रियः सर्वाभि पर्याप्तिभि पर्याप्तः, मासद्वयोपरिवर्त्तीत्यवधार्यं मासद्वयमध्यवर्तीतु स्वर्गे न यातीति, पूर्वभविकवैक्रियलब्धिकः पूर्वभविकविध्रज्ञानलब्धिकः तथारूपस्य—तथाविधस्य उचितस्येत्यर्थः श्रमणस्य—साधोः वाशब्दो देवलोकोत्पादहेतुत्वं प्रति श्रमणमाहनवचन् योस्तुल्यत्वप्रदर्शनार्थः 'माहणस्य'ति माहन २ इत्येवमादिशति स्वयं स्यूलप्राणातिपातादिनिवृत्तवाद् माहनः—परमगीतार्थस्तस्य वा 'अतिए'ति समीपे एकमप्यास्तामनेकं आर्यं—आराद् यातं पापकर्मभ इत्यार्थं अत एव धार्मिकमित सुवचनं—शोमनवाक्यं श्रुत्वा—आकर्ण्यं निशम्य—मनसा अवधार्यं 'तउ'ति तदनन्तरमेव।

सः-गर्भस्थजन्तुः भवति-जायते 'तिव्वसं०' तीव्रसंवेगेन-भृशं दुःखलक्षाकुलभवभये सञ्जाता-सम्यगुत्पत्रा श्रद्धा-श्रद्धानं धर्मादिषु यस्य स तीव्रसंवेगसञ्जातश्रद्धः 'तिव्वध०' तीव्रं यो धर्मानुरागः-धर्मबहुमानस्तेन रक्त इव-रिङ्गतः इव यः स तीव्रधर्मानुरागरक्तः स गर्भस्य वैराग्यवान् जीवः 'णं' वाक्यालङ्कारे 'धम्मकामए'ति धर्मे-श्रुतचारित्रलक्षणे कामो-वाञ्छामात्रं यस्य स धर्मकामकः १ पुण्ये-तत्फलभूते श्रुभकर्मीणकामो यस्य स पुण्यकामकः स्थानाङ्गेतु-अव १ पान२वस्त्र३ऽऽलय४शयना५ऽऽसन६मनो७वचन८काय९लक्षणं नवविधं पुण्यं प्रतिपात्रितं जगदीश्वरेण भगवतेति २, स्वर्गे-देवलोके कामो यस्य स स्वर्गकामकः ३ मोक्षे-शिवे अनन्तानन्तसुखमयेकामो यस्य स मोक्षकामकः ४, एवमग्रेऽपि, नवरं काङा-गृद्धिरासिक्तिरित्यर्थ

धर्मे काङ्क्षा सञ्जाता अस्येति धर्मकाङ्क्षितः १ पुण्यकाङ्क्षितः २ स्वर्गकाङ्क्षितः ३ मोक्षकाङ्कितः ४ पिपासेव पिपासा—प्राप्तेऽपि धर्मेऽतृप्ति धर्मपिपासा सा सञ्जाता अस्येति धर्मिष् पासितः १ पुण्पिपासितः २ स्वर्गपिपासितः ३ मोक्षपिपासितः ४, 'तिद्यते' इत्यादिअष्टविशेषणानि धर्मपुण्यस्वर्गमोक्षे शुभानि वाच्यानि, तिद्यतः १ तन्मनाः २ तिष्ठेश्यः ३ तदध्यवसितः ४ तत्तीव्राध्य वसायः ५ तदर्थोपयुक्तः ६ तदर्पितकरणः ७ तदभावनाभावितः ८, 'एयंसिणं'ति एतस्मिन्नन्ते-धर्मध्यानावसरे कालं—मरणं 'करिज्ञ'ति कुर्यात् तदा देवलोकेषु उत्यद्यते, 'से' अथैतेनार्थेन्हे

गौतम! एवमस्माभि प्रोच्यते-अस्ति एककः कश्चित् स्वर्गे उत्पद्यते 'अत्यि'ति अस्ति एककः कश्चित् नोत्पद्यते इति । गर्माधिकारे पुनर्गोतमस्वामी श्रीमहावीरं प्रश्नयति-

मू. (२६) जीवेणं भंते! गब्भगए समाणे उत्ताणए वा पासिल्लए वा अंबखुजए वा अच्छिज वा चिडिज वा निसीइज वा तुयिङ्ज वा आसइज वा सइज वा माउए सुयमाणीए सुयइ जागरमाणीए जागरइ सुहियाए सुहिओ भवइ दुहियाए दुक्खिओ भवइ ?, हंता गोयमा! जीवे न गब्भगए समाणे उत्ताणए वा जाव दुक्खिओ भवइ।।

षृ. 'जीवे णं भंते ! ग०' जीवो हे भदन्त ! गर्भगतः सन् 'उत्ताणए वे'ति उत्तानको वा सुप्तोन्मुखो वेत्यर्थः 'पासिह्रिए व'ति पार्श्वशायी वा 'अंबखुजए व'ति आप्रफलवत् कुब्ज इति 'अच्छिज'ति आसीनः सामान्यतः, एतदेव विशेषतः उच्यते—'चिट्ठेज व'ति ऊर्ध्वस्थानेन 'निसीजए वे'ति निषदनस्थानेन 'तुयट्टेज व'ति शयीत निद्रया इति वेति 'आसइज व'ति आश्रयति गर्भमध्यप्रदेशं 'सइज व'ति शेते निद्रां विनेति, मात्रा मातिर वा 'सुयमाणीए'ति शयनं कुर्वत्या कुर्वत्यां वा 'सुयद्व'ति स्विपिति निद्रां करोतीत्वर्थः ।

'जागरमाणीए'ति जाग्रत्या—जागरणं कुर्वत्या कुर्वत्यां वा जागर्ति, निद्रानाशं कुरुते इत्यर्थः, सुखितायां सुखितो भवति, दुःखितायां दुःखितो भवति, 'हन्ता गोयम! ति' हन्त इति कोमलाम-न्त्रणार्थौ दीर्घत्वं च मागधदेशीप्रभवं, उभयत्रापि 'जीवे णं गब्भगए समाणे' इत्यदेः प्रत्युच्चारणं तु स्वानुमतत्वप्रदर्शनार्थः, वृद्धाः पुनराहुः—'हंता गोयमा!' इत्यत्र हन्त इति एवमेतदिति अभियुपगम-वचनं, यदनुमतं तस्रदर्शनार्थं 'जीवे णं गब्भगए' इत्यादि प्रत्युच्चारितमिति, हे गौतम! जीवो गर्भगतः सन् उत्तानको वा यावहुखितो भवतीति।

अथ पूर्वोक्तं पद्येन गायाचतुष्टयेन दर्शयन्नाह-

मू. (२७) थिरजायंपिह रक्खइ सम्मं साक्खई तओ जननी। संवाहई तुयट्टइ रक्खइ अप्पं च गब्धं च।।

वृ. 'थिराजा०' स्थिरजातं-स्थिरीभूतं 'रक्खइ'त्ति रक्षति-सामान्येन पालयति ततः सा जननीतं सम्यग्-यलादिकरणेन रक्षति 'संवाहइ'त्ति संवहति गमनाऽऽगमनादिप्रकारेण 'तुयट्टइ'-ति त्वगवर्त्तयति-स्वापयति रक्षति-आहारादिना पालयति आत्मानं च गर्मं चेति ॥

मू. (२८) अनुसुयइ सुयंतीए जागरमाणीए जागरइ गब्भो। सुहियाए होइ सुहियो दुहियाए दुक्खिओ होइ।।

दृ. 'अणु०' अनुस्विपिति–अनुशेते 'सुयंतीए'त्ति स्वपत्यां सत्या जाग्रत्यां जागर्ति गर्भ– उदरस्थजन्तु– जनन्यां सुखितायां सुखितो भवति दुःखितायां दुःखितो भवति ॥

मू. (२९) उच्चारे पासवणे खेलं संघाणओवि से नस्थि। अडीडीमिंजनहकेसमंसुरोमेसु परिणामो।।

षृ. 'उच्चारो०' उच्चारो-विष्ठाप्रश्रवणं-मूत्रं खेलो-निष्ठीवनं 'सिंघाणं'ति नासिकाश्लेष्मापि 'से' तस्य गर्भस्थस्य नास्तीति, जननीजठरस्थो जीव आहारत्वेन तु यद् गृह्णाति तदस्थ्यस्थिमिंज-नखकेशश्मश्रुरोमेषु (मसु) पूर्वव्याख्यातेषु 'परिणामो'ति परिणामयतीत्यर्थः।

- मू. (३०) आहारोपरिणामो उस्सासो तहय चेव निस्सासो, सव्वपएसेसु भवइ कवलहारो यसे नित्य ॥ (प्र.)
- मू. (३१) एवं बुंदिमइंगओ गट्ये संवसइ दुक्खिओ जीवो । परमतमिसंधकारे अमिज्झभरिए पएसंमि ।।
- ृृृृ 'एवं वु०' एवमुक्तप्रकारेण 'बुंदि'मिति शरीरं अतिगतः –प्राप्तः सन् गर्मे जननीकुक्षौ संवसित संतिष्ठते चारकगृहे चौरवत्, 'दुक्खिओ जीवो'ति अग्निवर्णामिः सूचीभिः भिद्यमानस्य जन्तोः यादशं दुःखं जायते ततोऽप्यष्टगुणं यद् दुःखं भवति तेन सद्देशेन दुःखेन दुःखितो भवति जीवः गर्मे, किंभूते गर्मे ? तमसा अन्धकारं यत्र तमोऽन्धकारः परमश्चासौ तमोऽन्धकारश्च परमतमोऽन्धकारः महान्धकारव्याप्त इत्यर्थः तस्मिन्, अमेध्यभृते विष्ठापूर्णे प्रदेशे जीववसनस्थानके इति ।
- मू. (३२) आउसो ! तओ नवमे मासे तीए वा पडुपन्ने वा अनागए वा चउण्हं माया अन्तयरं पयायइ, तंजहा—इत्थिं वा इत्थिलवेणं १ पुरिसं वा पुरिसलवेणं २ नपुंसगं वा नपुंसगरूवेणं ३ बिंबिं वा बिंबरूवेणं ४।
- षृ. 'आउसो! तओ' इत्यादि, हे आयुष्मन्!—हे इन्द्रभूते! ततः—अष्टमासानन्तरं नवमे मासे अतीते वा—अतिक्रान्ते वा प्रत्युत्पन्ने वा—वर्त्तमाने वा अनागते वा—अप्राप्ते वा 'चउण्हं' चतुर्णां स्त्र्यादिरूपाणां वक्ष्यमाणानां माता—जननी अन्यतरत्—चतुर्णां मध्ये एकतरं 'पयायइ'ति प्रसूते 'तंजह'ति तत् पूर्वोक्तं यथास्त्रियं वा स्त्रीरूपेण—स्त्र्याकारेण प्रसूते १ पुरुषं वा पुरुषरूपेण—पुरुषाकारेण २ नपुंसकं वा नपुंसकरूपेण—नपुंसककाकारेण ३ बिम्बं वा बिम्बरूपेण—बिम्बाकारेण, विम्बमिति गर्भप्रतिबिम्बं गर्भाकृतिरार्त्तवपरिणामो नतु गर्भ एव ४ ।

एते कथं जायन्त ? इत्याह--

- मू. (३३) अप्पं सुक्रं बहुं उउयं, इत्थी तत्थ जायइ १। अप्पं उयं बहुं सुक्रं, पुरिसो तत्थ जायइ २।।
- कृ. 'अप्पं' अल्पं शुक्रं 'बहुउउय'ति बहुकं-प्रभूतं 'उयं'ति ओजः-आर्त्तवं स्त्री तत्र गर्भाशये जायते-उत्पद्यते १, अल्पं-ओजः बहु शुक्रं पुरुषस्तत्र जायते २।
 - मू. (३४) दुण्हंपि रत्तसुक्काणं, तुल्लभावे नपुंसओ ३। इत्थिउयसमाओगे, विंबं तत्थ जायइ ४॥
- **यृ.** द्वयोरिप रक्तशुक्रयोः—रुधिरवीर्ययोः तुल्यभावे—समत्वे सित नपुंसको जायते ३, 'इत्थी'त्ति स्त्रियाः—नार्या 'ओय'त्ति ओजसः 'समाओगे'त्ति समायोगः—वातवशेन तित्थिरीभ-वनलक्षणं स्त्र्योजःसमायोगस्तस्मिन् सित बिम्बं तत्र—गर्भाशये प्रजायते ४ इति ।
 - मू. (३५)अह णं पसवणकालसमयंसि सीसेण वा पाएहिं वा आगच्छइ समागच्छइ तिरियमगच्छइ विनिधायमावज्ञइ ।
- षृ. 'अह ण'मित्यादि, अथानन्तरं 'णं' वाक्यालङ्कारे प्रसवकालसमये—जन्मकालावसरे शीर्षेण वा—मस्तकेन वा पादाभ्यां वा—चरणाभ्यां वा आगच्छति 'समागच्छड्'ति समम्—अविषम-मागच्छति 'सम्मं आगच्छड्'ति पाठे सम्यक्—अनुपद्यातहेतुना आगच्छति—मातुरुदरात योन्या-

निष्क्रामति, 'तिरियमागच्छइ'ति तिरश्चीनो भूत्वा जठरात्रिर्गन्तुं प्रवर्त्तते यदि तदा विनिर्घातं— मरणमापद्यते निर्गमाभावादिति ।

मू. (३६) कोई पुण पावकारी बारस संवच्छराइं उक्कोसं। अच्छइ उ गब्भवासे असुइप्पभवे असुइयंपि।।

षृ. 'कोइ पुणo' कोऽपि पुनः पापकारी—ग्रामघातरामाजठरविदारणजिनमुनिमहा-शातनाविधायी वातपित्तादिदूषितो देवादिस्तन्भितो वेति शेषः, द्वादश संवत्सराणि उत्कृष्टतः 'अच्छइ'त्ति तिष्ठति, तुशब्दात् गर्भोक्तं प्रबलं दुःखं सहमानमोऽवतिष्ठते गर्भवासे—गर्भगृहे, किम्पूते ? —अशुचिप्रभवे अशुचिके—अशुच्यात्मके इति ।

मू. (३७) जायमाणस्स जं दुक्खं, मरमाणस्स वा पुणो । तेण दुक्खेण संमूढो, जाइं सरइ नऽप्पणो ।।

षृ. ननु नवमासमात्रान्तरितमपिप्राक्तनं भवं सामान्यजीवः किं न स्मरतीत्याह—'जायमा०' गाथा, जायमानस्य-गर्भात्रिसरतः तत्र उत्पद्यमानस्य वा यहुखं भवति वा—अथवा पुनर्प्रियमाणस्य यहुखं भवति तेन दारुणदुःखेन संमूढो—महामोहं प्राप्तः जातिं—प्राक्तनभवं आत्मीयं—स्वकीयं मूढात्मा प्राणी न स्मरति—कोऽहं पूर्वभवे देवादिकोऽभविमिति न जानीतीति ।

पू. (३८) वीसरसरं रसंतोजो सो जोणीमुहाओ निष्फिडइ। माऊए अप्पणोऽविय वेयणमउलं जणेमाणो।।

वृ. 'वीसर'त्ति परमकरुणोत्पादकं 'सरं'ति स्वरं–ध्वनिं 'रसंतो'त्ति भृशं कुर्वन् स गर्भस्थो जीवः योनिमुखात् निष्कामति मातुः आत्मनोऽपिच वेदनामतुलां जनयन्–उत्पादयन् ।

मू. (३९) गब्भधरयंपि जीवो कुंभीपागंपि नरयसंकासे। वुत्यो अभिज्झमज्झे असुइप्पभवे असुइयंपि॥

षृ. 'गब्मत्थ' गाँथा, गर्भगृहे जीवः कुंभीपाके कोष्ठिकाकृतितप्तलोहभाजनसध्शे नरकसध्शे—नारकोत्पत्तिस्थानतुल्ये 'वुच्छो'ति उषितः—स्थितः, अमेध्यं—गूथं मध्ये यस्य गर्भगृहस्य सः अमेध्यमध्यस्तस्मिन् अशुचिप्रभवे—जम्बालाद्युद्भवे अशुचिके—अपवित्रस्वरूपे ।

मू. (४०) पित्तस्स य सिंभस्स य सुक्कस्स य सोणियस्स चिय मज्झे । मृत्तस्स पुरीसस्स य जायइ जह वद्यकिमिउव्य ॥

वृ. 'पित्त॰' पित्तस्य 'सिंभस्य' श्लेष्मणः शुक्रस्य शोणितस्य मूत्रस्य पुरीषस्य-विष्ठायाः मध्ये-मध्यभागे जायते-उत्पद्यते, कड्व? -'वज्ञकिम्मिउव्य'ति वर्चस्वकृमिवत्-विष्ठानीलंगवत्, यथा कृमि-द्वीन्द्रियजन्तुविशेषः उदरमध्यस्थविष्ठायामुत्पद्यते तथा जीवोऽपीति ।

मू. (४९) तं दानि सोयकरणं केरिसयं होइ तस्स जीवस्स I सुक्करुहिरागराओ जस्सुष्पत्ती सरीरस्स II

षृ. 'तं दाणि॰' तत् 'दाणि'ति इदानीं—साम्प्रतं शौचकरणं—शरीरसंस्कारकरणं की६शं भवतितस्य—गर्भनिर्गतस्य जीवस्य ?, यस्य भहुरशरीरस्योत्पत्ति—प्रादुर्भावः शुक्ररुधिराकरात्—वीर्यरुधिरखनेः वर्तत इति ।

पू. (४२) एयारिसे सरीरे कलमलभरिए अमिज्झसंभूए ।

निययं विगणिञ्जंतं सोयमयं केरिसं तस्स ॥

वृ. 'एया०' एता६शे शरीरे कलमलभृते—उदरस्थजलबटकदमादिपूर्णे अमेध्यसम्भूते—विष्ठाकीर्णोदरसम्भूते 'निययं विगणिज्ञंत' मिति पद्धये 'सप्तम्या द्वितीये' ति सप्तम्यर्थे द्वितीया, निजके—आत्मीये 'विगणिज्ञंत' मिति आत्मपरेषां जुगुप्तायोग्ये शौचमतं—पवित्रत्वाङ्गीकारलक्षणं, यथा मयाऽस्य स्नानचन्दनादिना पवित्रत्वं विधेयमिति, यद्वा शौचेन—वस्त्रचन्दनाभरणादिना मदो—गर्वो यत्र सनत्कुमारचिकवित् तत् शौचमदं यथा कीद्दशं मम शरीरं शोभतेऽलङ्कारादिनेति, यदिवा एवंविधे शरीरे कुत्रापि रोगादिना विनष्टे शोकमतं—शोकाङ्गीकारकरणं यथा—हा मम सुन्दरं शरीरं स्फोटकादिना विनष्टमिति, की६शं तस्य जीवस्येति।

अय जीवानां ग्रन्थमुखे द्वितीयगाथया सूचिता दश दशाः निरूप्यन्ते-

मू. (४३) आउसो !एवं जायस्स जंतुस्स कमेण दस दसा एवमाहिञ्जंति तंजहा-

षृ. 'आउसो ए०' हे आयुष्मन्! एवम्-उक्तप्रकारेण जातस्य-उत्पन्नस्य जन्तोः-जीवस्य क्रमेण-अनुक्रमेणदश दशा-दशावस्थाः, दशवर्षप्रमाणा प्रथमा दशा-अवस्था १ दशवर्षप्रमाणा द्वितीया दशाऽवस्था २ इत्येवं दश दशाः, एवं-वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहिजंती'ति आख्या यन्ते-कथ्यन्ते, तद्यथा-

मू. (४४)वाला १ किड्डा २ मंदा ३ बला य ४ पण्णा य ५ हायणि ६ पर्वचा ७। गब्भारा ८ मुम्मुही ९ सायणी य दसमा य १० कालजाणंति बालया।।

वृ. 'बाला १ किड्डा २' इत्यादिगाथा, बालस्येयमवस्था धर्मधर्मिणोरभेदात् बाला १, क्रीडाप्रधाना दशा क्रीडा २, मन्दो—विशिष्टबलबुद्धिकार्योपदर्शनासमर्थो भोगानुभूतावेव समर्थे यस्यां दशायां सा मन्दा ३, यस्यां पुरुषस्य बलं स्यात् सा बलयोगात् बला ४, प्रज्ञा—वाञ्छितार्थः सम्पादनकुटुम्बाभिवृद्धिविषया बुद्धिः तद्योगात् दशा प्रज्ञा ५, पाहयति पुरुषस्येन्द्रियाणि मनाक् स्वार्थग्रहणाप्रमूणि करोतीति हापनी ६, प्रपश्चयति—विस्तारयति खेलकासादि इति प्रपञ्च ॥ प्राग्भारं—ईषदवनतमुच्यते तदिव गात्रं यस्यां सा प्रागभारा ८, मोचनं—मुक् जराराक्षसीस-माक्रान्तशरीरगृहस्य मोचनं तं प्रति मुखं—अभिमुख्यं यस्यां सा मुनमुखी ९, स्वापयति—निद्रायतं करोति सा शायिनी दशमी १०, एताः कालोपलिक्षताः दशाः कालदशाः उच्यन्ते इति ।

मू. (४५) जायमित्तस्त जंतुस्त जासा पढिमया दसा । न तत्थसुहं दुक्खं वा नहु जाणंति बालया ।।

वृ. अथ सूत्रेणैव दश दशा दर्शनन्नाह—'जायमि०' श्लोकः, जातमात्रस्य जन्तोः—जीवस या सा प्रथमिका दशा—दशवर्षप्रमणावस्था 'तत्थ'त्ति तस्यां प्रथमदशायां प्रायेण सुखं दुःखं ब नेति—नास्ति, तथाऽऽत्मपरेषां सुखदुःखं नैव जानंति बालकाः—जातिस्मरणादिज्ञानविकलाइति

मू. (४६) बीईयं च दसं पत्तो, नाणाकीलाहिं कीडइ। न य से कामभोगेसु, तिव्वा उप्पञ्जई रई।।

वृ. 'बीईयं च' द्वितीयां दशां प्राप्तो जीवो नानाक्रीडाभि क्रीडित—क्रीडां करोतीत्यर्यः, 'से' तस्य द्वितीयाऽवस्थावर्त्तिनोजीवस्य कामौ च—शब्दरूपे भोगाश्च—गन्धरसस्पर्शा कामभोगासेषु तीव्रा—प्रवला रति—मन्मथवाञ्छा नोत्पद्यते न प्रकटीभवतीत्यर्यः । मू. (४७)

तइयं च दसं पत्तो, पंचकामगुणे नरो। समत्थो भुंजिउं भोए, जइ से अत्थि घरे धुवा।।

वृ. 'तइयं च' तृतीयां दशां प्राप्तः पञ्चकामगुणे-शब्दरूपरसंगन्धस्पर्शलक्षणे नरो-मनुष्यः आसक्तो भवति, तथा तदा भोगान् भोक्तुं समर्थो भवति यदि 'से' तस्य जीवस्य अस्तीति-सत्तारूपतया वर्तते गृहे-स्वावासे 'धुवे'ति राजाद्युपद्रवाभावेन निश्चला समृद्धिरिति शेषः ।

पू. (४८) चउत्थी उ बला नाम, जं नरो दसमस्सिओ। समत्थो बलं दरिसेउं. जड भवे निरुवहवो।।

षृ. 'चउ०' चतुर्थी बलानाम्नी दशा वर्तते यां बलानाम्नी दशामाश्रितो नरः समर्थी भवति बलं-स्ववीर्यं द्रष्टुं (दर्शयितुं) फलिहमछवत्, यदि भवेत् निरुपद्रवो—रोगादिक्लेशरहितः, अन्यथा माल्यिकमछवत् विनाशं यातीति ।

मू. (४९) पंचमी उ दसं पत्तो, आणुपुव्वीए जो नरो। समत्थोऽत्यं विचिंतेउं, कुडुंबं चाभिगच्छइ।।

वृ. 'पंचमी उ' पश्चमीं दशां प्राप्तः आनुपूर्व्या-परिपाट्या यो नरः स समर्थी भवति अर्थं विचिन्तयितुं-द्रव्यचिन्तां कर्त्तुं च पुनः कुटुम्बं प्रति अभिगच्छति-कुटुंबचिन्तायां प्रवर्तते इत्यर्थः

मू. (५०) छडीओ हायणी नामा, जं नरो दसमस्सिओ। विरज्जइ उ कामेसुं, इंदिएसु य हायइ।।

वृ. 'छड़ी उ' षष्ठी हापनीनाम्नी दशा वर्त्तते, यां हापनीं दशां नर आश्रितः 'विरज्जइ'त्ति प्रवाहेण विरक्तो भवति, केभ्यः ? –काम्यंत इति कामाः–कन्दर्पाभिलाषास्तेभ्यः इन्द्रियेषु – श्रवणग्राणचक्षुर्जिह्वास्पर्शनलक्षणेषु हीयते –हानिं गच्छतीत्यर्थः ।।

मू. (५१) सत्तमी य पवंचा ओ, जं नरो दसमस्सिओ। निच्छुमइ चिक्कणं खेलं, खासई य खणे खणे।।

वृ. 'सत्तमी०' सप्तमी प्रपञ्चा दशा यां दशां आश्रितः 'निच्छुभइ'ति बहिर्निक्षिपति यत्र कुत्रापि बहिर्निस्सारयति चिक्कणं-पिच्छिलं चेपकतुल्यमित्यर्थ 'खेलं' श्लेष्माणं च पुनः क्षणं २-वारं २ 'खाइ'ति-खासितं करोतीत्यर्थः ।

मू. (५२) संकुइयवलीचम्पो, संपत्तो अङ्घमीदसं । नारीणं च अणिङ्घो य, जराए परिणामिओ ॥

षृ. 'संकुइ०' अष्टमीं दशां प्राप्तो जीवः सङ्खुचितवित्तचर्मा भवति, च पुनः जरया परिणमितो-व्याप्तः स्यात्, नारीणां स्वपरस्त्रीणां अनिष्टो भवति, श्रावस्तीपुरीवास्तव्यजिनदत्तश्राद्धवदिति

म्. (५३) नवमी मुम्मुही नाम, जं नरो दसमस्सिओ। जराघरे विणस्संते, जीवो वसइ अकामओ।।

वृ. नवमी मुन्मुखी नाम्नी वर्त्तते, यां मुन्मुखीं दशां नरः आश्रितः 'जराधरे' जरागृहे शरीरे विनश्यति सति जीवोऽकामको—विषयादिवाञ्छारहितो वसति ।

मू. (५४) हीनभित्रसरो दीनो, विवरीओ विचित्तओ। दुब्बलो दुक्खिओ सुयई, संपत्तो दसमीं दसं।। षृ. 'हीण०' हीनस्वरः-लघुध्वनि भिन्नस्वरः-स्वभावस्वरादन्यस्वरः दीनः-दीनत्वं गतः विपरीतः-पूर्वावस्थातः विचित्तः विचित्रो वा-नानास्वरूपः दुर्बलः-कृशाङ्गः दुःखितो-रोगादि-पीडालक्षव्याप्तः एवंविधो जीवः स्वपिति स्वशरीरे स्वगृहे वा संप्राप्तः ।

कां ? -दशमीं दशामिति ॥ यस्यां यद् भवति तदाह-

मू. (५५) दसगस्स उवकखेवो वीसइवरिसो उ गिण्हई विज्ञं । भोगा य तीसगस्स य चत्तलीसस्स विञ्राणं ।।

षृ. 'दसग०' दशकस्य-दशवर्षप्रमाणस्य जीवस्य 'उवक्खेवो' त्ति वालोत्पाटनं मुण्डनमिति लोकोक्ति, उपलक्षणत्वादन्यदपिप्रथमावस्थाभवो महोत्सवविशेषो ज्ञेय इति १, विंशतिवर्षको-द्वितीयावस्थावर्ती विद्यां गृह्णातीति २, विंशतकस्य भोगा भवन्ति ३ चत्वारिंशत्कस्य विज्ञानं भवति ४।

मू. (५६) पन्नासगस्स चक्खू हायइ सिट्टकेयस्स बाहुबलं । भोगय सत्तरिस्स य असीइगस्सा य वित्राणं ।।

षृ. 'पन्ना०' पञ्चाशत्क्य जीवस्य 'चक्खु'ति चक्षुर्बलं हीयते ५, षष्टिकस्य बाहुबलं हीयते ६, पस्ततिकस्य भोगा हीयन्ते ७, अशीतिकस्य विज्ञानं हीयते ८ ॥

मू. (५७) नर्ज्ड नमइ सरीरं वाससए जीवियं चयइ। कित्तिओऽत्य सुहो भागो दुहो भागो य कित्तिओ।।

वृ. 'नउइ०' नवतिकस्य शरीरं नमति-वक्रं भवतीत्यर्थ ९, वर्षशतेऽप्यर्थे दुःखभागोऽपि कीर्तितोऽस्तीति, यद्धा अत्र 'कित्तिओ'ति कियान् सुखभागो वर्तते कियान् दुःखभागो वर्तते॥

मू. (५८) जो वाससयं जीवइष सुही भौगे पभुंजइ। तस्सावि सेविउं सेओ, धम्मो य जिनदेसिओ।।

वृ. अथ शतवर्षायुष्कस्य जीवस्यान्यस्यापि उपदेशं ददातीति 'जो वासo'यो जीवो वर्षशतं जीवति प्राणान् धारयतीत्यर्थः, च पुनः सुखी भोगान् भुंक्ते तस्यापि जीवस्य सेवितुं–सदा कर्तुं श्रेयो–मङ्गलं धर्मी–दुर्गतिपतञ्जवाधारः जिनेशितः–केवलिना भाषितः ।।

मू. (५९) किं पुण सपद्यवाए, जो नरो निद्यदुक्खिओ। सुदुयरं तेण कायव्यो, धम्मो य जिनदेसिओ।!

वृ. 'किं पुणo' किं पुनः सप्रत्यवाये—सकष्टे आयुषि काले वा सित इति शेषः, यो नरो नित्यदु—खितः—सदा दुःखाकुलो भवेत्?, तेन दुःखितजीवेन जिनदर्शितो धर्म सुष्ठुतरं—विशेषतः कर्त्तव्यो नन्दिषेणपूर्वभवब्राह्मणजीववदिति ॥

मू. (६०) नंदमाणो चरे धम्मं, वरं मे लड़तरं भवे । अनंदमाणोऽवि चरे, मा मे पावतरं भवे ॥

षृ. 'नंदमा० 'नन्दमानः- सौख्यं मुञ्जानो धर्मं जिनोक्तं चरेत्- कुर्यादित्यर्थः, किंभूतं धर्मं ? –वरं-श्रेष्ठं शिप्रापकत्वात्, कया भावनया धर्मं कुर्यादित्याह-मे-मम अत्र भवे परभवे च 'लष्टतरं' अतिकल्याणं भवेदिति भावनयेति, अनन्दमाणोऽवि—अनन्दन्नपि सौख्यमभुञ्जानोऽपि धर्मं कुर्यात्, कया भावनयेत्याह-मे-मम पापतरं मा भवतु-एकं तावदहं पापफलं भुंजे पुनर्धर्माकरेण मा भवतु मेऽतिपापफलमिति भावनयेति ॥

मू. (६९) नवि जाई कुलं वावि, विज्ञा वाऽवि सुसिक्खिया । तारे नरं व नारिं वा, सख्वं पुत्रेहिं वहुई ।।

वृ. किंच-'निव जा०' नरं-पुरुषं वाशब्दाद् बालादिभेदभिन्नं नारीं-स्त्रियं वाशब्दात् क्लीबं जाति-मातृपक्षः ब्राह्मणादिका जातिर्वा कुल-पितृपक्षः उग्रभोगादिकं कुलं वा विद्या वा सुशिक्षिता-सदभ्यस्तावा नापीति-नैव तारयति-भवाब्धितीरं प्रापयति, सर्वं स्वर्गापवगदिसौख्यं पुण्यैः-संविग्नसाधुदानादिभिवधिते-प्राप्यते इत्यर्थः, अत्रान्यत्रापि वकारचकारापिशब्दाः यथायोगं पूरणसमुद्ययादिकेऽर्थे ज्ञातव्या इति ।।

मू. (६२) पुत्रेहिं हीयमाणेहिं, पुरिसागरोऽवि हायई। पुत्रेहिं वहृमाणेहिं, पुरिसगारोऽवि वहृई।।

वृ. 'पुत्रेहिं' पुण्यैः—अन्नपानवस्त्रपीठफलकौषधादिभि साधुदानादिभिरुपार्जितशुभफलैः हीयमानैः—क्षयं गच्छदभि पुरुषकारः—पुरुषाभिमानः अपिशब्दादन्यदिप यशःकीर्त्तिस्फीतिलक्ष्म-यादिकं हीयते—शनैः शनैः क्षयं यातीत्यर्थः, पुण्यैः वर्द्धमानैः पुरुषकारोऽपि वर्द्धते ॥

मू. (६३) पुत्राइं खलु आउसो ! किन्नाइं करिणजाईं पीइकराइं वन्नकराइं धणकराइं कितिकराइं, नो य खलु आउसो ! एवं चिंतियव्वं—एस्सिति खलु बहवे समया १ आविलया २ खणा ३ आणापाणू ४ थोवा ५ लवा ६ मुहुत्ता ७ दिवसा ८ अहोरत्ता ९ पक्खा १० मासा ११ रिऊ १२ अयमा १३ संवच्छरा १४ जुगा १५ वाससया १६ वाससहस्सा १७ वाससयसहस्सा १८ वासकोडीओ १९ वासकोडाकोडीओ २०।

जत्य णं अम्हे बहूइं सीलाइं वयाइं गुणाइं वेरमणाइं पद्मक्खाणाइं पोसहोववासाइं पडिविजिस्सामो पद्वविस्सामो किरिस्सामो, ता किमत्थं आउसो ! नो एवं चिंतेयव्वं भवइ ?, अंतरायबहुले खलु अयं जीविए, इमे बहवे वाइयिपत्तियसिंभियसंनिवाइया विविहा रोगायंका फुसंति जीवियं।

वृ. 'पुत्राइं०' इत्यादि गद्यं, खलुं निश्चये हे आयुष्मन् ! पुण्यानि-शुभप्रकृतिलपाणि कृत्यानि-कार्याणि करणीयानि-कर्तुं योग्यानि प्रीतिकराणीति-मित्रादिना सह स्नेहोत्पादकिन वर्ण्णकराणि—एकदिगव्यापिसाधुवादकराणीत्यर्थः, धनकराणि—सद्रलसमृद्धिकराणि कीर्ति-कराणि—सर्वदिगव्यापिसाधुवादकराणीत्यर्थः, नैव च खलु एवार्यत्वात् हे आयुष्मन्! एवं -वक्ष्यमाणं विन्तितव्यं-मनसा विकल्पनीयं 'एस्संती'ति एष्यन्ति—आगमिष्यन्ति खलु निश्चये बहवः समयाः, 'बहव' इत्यग्रेऽपि योज्यं, सर्वनिकृष्टः कालः समयः १, असङ्ख्यातैः समयैराविलका, जघन्ययुक्ता-सङ्ख्येयसमयराशिमाना इत्यर्थः २, अष्टादशिनमेषैः काष्ठा, काष्ठाद्वयं लवः, लवैः पञ्चदशिमः कला, कलाद्वयं लेशः, पञ्चदशिमलेशैः क्षणः ३, सङ्ख्येया आविलका आनः एकः उच्छ्वास इत्यर्थः ता एव सङ्ख्येया निश्वासः द्वयोरिप कालः प्राणः ४, सप्तिभः प्राणैः स्तोकः ५ सप्तिभः स्तोकैर्लवः ६ सप्तसप्तत्या लवैः मुहूर्त्तः ७ पञ्चदशमुहूर्त्तैर्दिवसः ८ त्रिंशन्मुहूर्त्तेरहोरात्रः ९ ।

- तैः पञ्चदशभि पक्षः १० ताभ्यां द्वाभ्यां मासः ११ मासद्वयेन ऋतुः १२ ऋतुत्रयमानमयनं १३ अयनद्वयेन संवत्सरः १४ पञ्चभिस्तैर्युगं १५ विंशत्या युगैर्वर्षशतं १६ तैर्दशभिर्वर्षसहस्रं १७तेषां शतेन वर्षशतसहस्रं लक्षमित्यर्थः १८ शतल शैर्वर्षैर्वर्षकोटिः १९ वर्षकोटि वर्षकोटिभिः गुण्यते वर्षकोटीकोटिः भवति १००,०००,०००,०००,००० इति २०।

यत्र समयावित्तकादी 'णं' वाक्यालङ्कारे 'अन्हे'ति वयं बहूनि—प्रभूतानि शीलानि—समाधानानि व्रतानि—महाव्रतानि 'गुणा'इति गुणान्—विनयादीन्, अत्र 'गुणाद्याः क्लीबे वे' ति क्लीबत्वं, 'वेरमणाइं'ति असंयमादिभ्यो निवर्त्तनानि प्रत्याख्यानानीति—नमस्कारसहित-पौरुष्यादीनि पौषधः—पुर्वदिनमष्टम्यादि तत्रोपवासा—अभक्तार्थकरणानि पौषधोपवासास्तान् प्रतिपद्यामहे—आचार्यादिपाश्वेंऽङ्गीकरिष्यामः 'पष्टुविस्सामो'ति प्रस्थापयिष्यामः अङ्गीकरणानन्तरं प्रथमतया कर्त्तुमारप्यामः करिष्याम इति—साक्षात्कारेण सततं निष्पादयिष्यामः, 'त'ति तावदादौ किमर्थं नैव चिन्तयितव्यं ? , हे आयुष्पन् ! त्वं शृणु यतो भवति अन्तरायबहुलं—विष्णप्रचुरिमदं खलुनिश्चये जीवितं—आयुर्जीवानां, तथा इमे—प्रत्यक्षाः बहवः वातिका—वातरोगोद्भवाः पैत्तिकाः—पित्तरोगजाः 'सिभिय'ति श्लेष्मभवाः सान्निपातिकाः—सन्निपातजन्याः विविधाः—अनेकप्रकारा रोगा—व्याधयस्ते च ते आतङ्काश्च—कृष्य्रजीवितकारिणः इति रोगातङ्काः जीवितं स्पृशंतीति ।

अथ सर्वान् अपि मनुजान् एते रोगाः स्पृशन्ति न वा ? इति दर्शयन्नाह-

मू. (६४) आसी य खलु आउसो ! पुळ्चि मणुया ववगयरोगायंका बहुवाससयसहस्स-जीविणो, तंजहा-जुयलधम्मिया अरिहन्ता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा चारणा विञ्जाहरा।ते णं मणुया अणइवरसोमचारुरूवा भोगुत्तमा भोगलक्खणधरा सुजायसव्वंगसुन्दरंगा रत्तुप्पलपउमकरचरणकोमलंगुलितला नगनगरमगरसागरचक्कंकधरंकलक्खणंकियतला सुप्पइड्रियकुम्पचारुचलणा आणुपुट्चि सुजायपीवरंगुलिया उन्नयतणुतंबनिद्धनहा संठियसुसिलि-हुगूढगुष्फा एणीकुरुविंदावत्तवहाणुपुव्वजंघा समुग्गनिमग्गगूढजाणु गयससणसुजायसंत्रिभोल वरवारणमत्ततुञ्जविक्कमविलासियगई सुजायवरतुरयगुज्झदेसा आइण्णहयव्य निरुवलेवा पमुइयवरतुरयसीहअइरेगवट्टियकडी साहयसोणंदमुसलदप्पणनिगरियवरकणगच्छरुसरिस-वरवइरवलियमज्झा गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरणतरुणबोहियविकोसायंतप-उमगंभीरवियङनाभी उजुयसमसहियसुजायजायजञ्चतणुकसिणनिद्धआइञ्जलङहसुकुमालमउ-यरमणिजरोमराई झसविहगसुजायपीणकुच्छी झसोयरा पउमवियडना संगयपासा सन्नयपासा सुंदरपासा सुजायपासा मियमाइयपीणरईयपासा अकरंडुयकणयरुयगनिम्मलसुजायनिरुवहय-र्देहधारी पसत्यबत्तीस-लक्खणधरा कणगसिलायलुञ्जलपसत्यसमतलउवचियविच्छिन्नपिहुलवच्छा सिरिवच्छंकियवच्छा पुरवरफलिहवट्टियभुया भुयगीसरविउलभोगआयाणफलिहउच्छुढदीहबाह् जुगसंनिभपीणरइयपीवरपउडाः संठियउवचियघणथिरसुबद्धसुवृहसुसिलिङ्ढलङ पव्वसंधी रत्ततलोवचियमउयमंसलसुजायलक्खणयसत्यअच्छिद्दजालपाणी पीवरवट्टियसुजायकोमलव-रंगुलिया तंबतलिणसुइरुइरनिद्धनक्खा -

– चंदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा संखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा सुत्थियपाणिलेहा सिसरिवसंखचक्कसुत्थियसुविभत्तसुविरइयपाणिलेहा वरमिहसवराहसीहसदूलउसभनागवरवि-उलउन्नयमउयक्खंधा चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसिरसगीवा अवड्वियसुविभत्तचित्तमंसू मंसलसंठियपसत्थसदूलविउलहणुया ओयवियसिलप्पदालिबंबफलसिन्नभाधरुड्डा पंडुरसि-ससगलविमलनिम्मलसंखगीक्खीरकुंददगरयमणालियाधवलदंतसेढी अखंडदंता अफुडियदंता अविरलदंता सुनिद्धदंता सुजायदंता एकदंता सेढीविव अनेगदंता हुयवहनिद्धंतधोयतत्ततविणञ्जरत्ततलतालुजीहा सारस- नवथणियमहुरगभीरुकुंचिनग्घोसदुंदुहिसरा गरुलाययउञ्जुतुंगनासा अवदारियपुंडरीयवयणा कोकासियधवलपुंडरीयपत्तलच्छा आनामियचावरइलिकण्हचिहुरराईसुसंठियसंगयआयय- सुजायभुमया अल्लीणपमाणुत्तसवणा सुसवणा
पीणमंसलकवोलदेसभागा अइरुग्यसमग्ग- सुनिद्धचंदद्धसंठियनिडाला उडुवइपडिपुन्न सोमवयणा छत्तागारुत्तमंगदेसाधणनिचियसुबद्ध-लक्खणुत्रयकूडागारितभिनिरुवमपिंडियग्गसिरा
हुयवहनिद्धंतधोयतत्तवणिञ्जकेसंतकेसभूमी समलीबोंडधणनिचियच्छोडियमिउविसयसुहुमलक्खण पसत्थसुगंधिसुंदरभुयमोयग- भिंगनीलकञ्जलपहट्ठभमरगणनिद्धनिउरंव
निचियकुंचियपयाहिणावत्तमुद्धसिरयालक्खण-वंजणगुणोववेयामाणुम्माणपमाणपिडपुत्रसुजायसव्वंगसुंदरंगा सिससोमागारकंतिपयदंसणा सब्भावसिंगारचारुखवा पासाईया दिरसणिञ्जा
अभिक्वा पडिक्वा।

तै णं मणुया ओहस्सरा मेहस्सरा हंसस्सरा कोंचस्सरा नंदिस्सरा नंदिघोसा सीहस्सरा सीहघोसा मंजुस्सरा मंजुधोसा सुस्सरा सुस्सरघोसा अणुलोमवाउवेगा कंकग्गहणी कवोयपरिणामा सउणीष्फोसिपट्टंतरोरुपरिणया पउमुप्पलसुगंधिसिरसिनीसाससुरिभवयणा धवी निरायंका उत्तम-पसत्था अइसेसिनरुवमतणू जञ्जमञ्जकलंकसेयरयदोसविज्ञयसरीरिनरवलेवा छायाउज्जोविअंगमंगा बिज्ञिरिसहनारायसंघयणा समयतुरंससंठाणसंठिया छघणुसहस्साइं उट्टं उद्यत्तेणं पन्नता ।

ते णं मणुया दो छप्पण्णगपिड्रिकरंडयसया पन्नता समणाउसो ! ते णं मणुया पगइभद्दया णाइविणीया पगइउवसंता पगइपयणुकोहमाणमायालोभा मिउमद्दवसंपन्ना अल्लीणा भद्दया विणीया अप्पिच्छा असंनिहिसंचया अचंडा असिमसिकिसिवाणिज्ञविवज्ञिया विडिमंतरनिवासिणो इच्छिय कामकामिणो गेहागाररुक्खकयनिलया पुढविपुष्फफलाहारा ते णं मनुयगणा पन्नता ।

षृ. 'आसी य खलु' आसन् — चशब्दात् संति भविष्यन्ति च खलु — निश्चये हे आयुष्पन् ! — हे गणिगुणगणधर! पूर्वं — पूर्विस्मिन् काले प्रथमिदितीयतृतीयचतुर्यारकेषु यथासम्भवं मनुजाः — नराः रोगो — व्याधिः स चासावातङ्कश्च रोगातंकः व्यापगतो रोगातङ्को येषां ते व्यापगतरोगातङ्काः यद्वा रोगश्च — ज्वरादि आतङ्कश्च — सद्यः प्राणहारी शूलादी रोगातङ्कौ तौ व्यापगतौ येषां ते व्यापगतरोगातङ्काः यद्वा रोगश्च — ज्वरादि आतङ्कश्च — सद्यः प्राणहारी शूलादी रोगातङ्कौ तौ व्यापगतौ येषां ते तथा, बहुवर्षशतसहस्रजीविनः, तद्यथा — युगलधार्मिकाः अर्हन्तः — तीर्थङ्कराश्चक्रवर्त्तिनः बलदेवा — वासुदेवज्येष्ठवान्धवः वासुदेवाः — बलदेवलधुवान्धवास्त्रखण्डभोक्तारः चारमाः — जङ्काचारणिवद्याचारणलक्षणाः विद्यां धारयन्तीति विद्याधराः निमिवनन्याद्याः ।

'तेण'मितिणं वाक्यालङ्कारे तेयुगलधार्मिका अर्हदादयो मनुजाः—मनुष्याः 'अणइवरे'ति अतीव—अतिशयेन 'सोमं' दृष्टिसुभगं चारु रूपं येषां ते तथा यद्वा 'अणवइरसोमचारुरूव'ति अतीति अव्ययमतिक्रमार्थे न अति अनित सौम्यं च तद्वारु च सौम्यचारु सौम्यचारु च तद्भूपं च सौम्यचारुरूपं वत्सौम्यचारुरूपं वत्सौम्यचारुरूपं येषां ते अनितवरसौम्यचारुरूपं, देवैरपि स्वलावण्यगुणादिभिरजितरूपा इत्यर्थः।

भोगैरुत्तमाः भोगोत्तमाः सर्वोत्तमभोगभोक्तार इत्यर्थः, भोगसूचकलक्षणानि-स्वस्तिकादीनि

धायन्तीति भोगलक्षणधराः सुजातानि—सुनिष्पन्नानि सर्वाणि अङ्गानि—अवयवाः यत्र तदेवंविधं सुन्दरं अङ्गं--शरीरं येषां ते सुजातसर्वाङ्गसुन्दराङ्गाः, 'रत्तुष्पलपउमकरचरणकोमलंगुलितल'ति रक्तोत्पलवत् करचरणानां कोमला अङ्गुल्यो येषां ते तथा, तथा पद्मवत् करचरणानां कोमलानि तलानि—अधोभागा येषां ते तथा, नगः--पर्वतः नगरं प्रतीतं मकरो-मत्स्यः सागरः--समुद्रः चक्रं प्रतीतं अङ्गुधरः--चन्द्रः अङ्गः-तस्यैव लाञ्छनं मृगः एवंरूपैर्लक्षणैरङ्कितानि तलानि—पादाधोभागाः येषां ते तथा।

सुप्रतिष्ठिताः—सिद्यिष्ठानवन्तः कूर्मवत्—कच्छपवत् चारवः चरणा येषां ते तथा, आनुपूर्व्या-परिपाटया वर्द्धमाना हीयमाना वा इति गम्यते, सुजाताः—सुनिष्पञ्चाः पीवराः अङ्गुलिकाः-पादाग्रावयवाः येषां ते तथा, उन्नताः—तुङ्गाः तनवः—प्रतलाः ताम्रा—अरुणाः स्निग्धाः—कान्तिमन्तो नखा येषां ते तथा, संस्थितौ—संस्थानविशेषवन्तौ सुन्ष्णिष्टौ—मांसलौ गूढौ—मांसलत्वादनुपलक्ष्यौ गुल्फौ—घुटकौ येषां ते तथा, आनुपूर्व्यर्ण—परिपाट्या वर्धमाना हीयमाना वा इति गम्यते, एणी— हरिणी तस्याश्चेह जङ्गा ग्राह्मा, कुरुविन्दं—तृणविशेषः वत्ता च—सूत्रवलनकं एतानीव वृत्ते—वर्तुले आनुपूर्व्यर्ण स्थूलस्थूलत्वेनेति गम्यं, जङ्गे—प्रसृते येषां ते तथा, समुद्गस्येव— समुद्गकपिक्षण इव निमग्ने—अन्तःप्रविष्टे गूढे—मांसलत्वादनुपलक्ष्ये जानुनी—अष्ठीवन्तौ येषां ते तथा।

गजो-हस्ती 'ससण'ति श्वसिति-प्राणिति अनेनेति श्वसनः-शुण्डादण्डः गजस्य श्वसनः गजश्वसनस्तस्य सुजातस्य-सुनिष्पन्नस्य सिन्नभे-स६शे ऊरू येषां ते तथा, वरवारणस्य-प्रधानग-जेन्द्रस्य तुल्यः-स६शो विक्रमः-पराक्रमो विलासिता-सञ्जातविलासा च गतिर्येषां ते तथा, सुजातवरतुरगस्येव सुगुप्तत्वेन गुह्यदेशो-लिङ्गलक्षणोऽवयवो येषां ते तथा, आकीर्णहय इव-जात्याश्व इव निरुपलेपाः-तथाविधमलविकलाः, प्रमुदितो-हष्यो यो वरतुरगः सिंहश्च ताभ्यां सकाशादितरेकेण-अतिशयेन वर्तिता-वर्तुला कटिर्येषां ते तथा, 'साहय'ति संहतं-संक्षिप्तं यत् सोणंदं त्रिकाष्ठिकामध्यं मुशलं-प्रतीतं दर्पणो-दर्पणगण्डो विवक्षितः 'निगरिय'ति सर्वथा शोधितं सारीकृतमित्यर्थः यद् वरकनकं तस्य यत् 'छरु'ति खङ्गादिमुष्टिस च (ततः) एतदद्वन्द्वसैः सदेशो यः ।

वरवज्ञवद् विलतः क्षामो-विलञ्जयोपेतो मध्यभागो येषां ते तथा, गङ्गावर्त्तक इव प्रदक्षिणावर्ती-दक्षिणावर्तती तरङ्गैरिव तरङ्गैः-तिसृभिर्विलिभर्भङ्गुरा तरङ्गभङ्कुरा रिविकरणेस्तरुणं-अभिनवं तत्प्रथमतया तत्कालिमत्यर्थः बोधितं-विकासितं 'विकोसायंत'ति विगतकोशं कृतं यत् पङ्कजंतद्वत् गम्भीरा विकटा च नाभिर्येषां ते तथा, 'उजुयo' ऋजुकानां—अवक्राणां समानान-मायामादिप्रमाणतः 'सिहय'ति संहितानाम्—अविरलानां सुजातानां जात्यानां—स्वाभाविकानं तनूनां—सूक्ष्माणां कृष्णानां—कालवर्णानां अथवा कृत्स्नानां—अभिन्नानां स्निग्धानां—कान्तानां आदेयानां—सौभाग्यवतां लडहानां—मनोज्ञानां सुकुमारमृदूनां—अत्यंतकोम- लानां रमणीयानां च रोम्णांतनुरुहाणां राजि—आविल्येषां ते तथा, झषविहगयोरिव— मत्स्यपक्षिणोरिव सुजातौ—सुभूतौ पीनौ—उपचितौ कुक्षी—जठरदेशौ येषां ते तथा, 'झषोदरा' इति प्रतीतं पद्मवद् विकटा नाभिर्येषां ते ता।

इदं च विशेषणं न पुन रुक्तं पूर्वोक्तस्य नाभिविशेषणस्य बाहुल्येन पाठादिति, सङ्गतपार्श्वाः

-युक्तपार्श्वाः सन्नतौ-अधोऽधो नमन्तौ पार्श्वी येषां ते सन्नतपार्श्वाः अत एव सुन्दरपार्श्वाः सुजातपार्श्वाः पार्श्वगुणोपेतपार्श्वाः इत्यर्थः मितौ-परिमितौ मातृकौ-मात्रोपेतौ एकार्थपद-द्वययोगादतीव मात्रान्वितौ नोचितप्रमाणाद्धीनाधिकौ पीनौ-उपचितौ रतिदौ-रमणीयौ पार्श्वौ येषां ते मितमातृकपीनरतिदपार्श्वा इत्यर्थः 'अकरंडुय'ति मांसोपचितत्वादिवद्यमान-पृष्ठिपार्श्वास्थिकमिव कनकरुचकं-काञ्चनकान्तिनिर्मलं-स्वाभाविकमलरहितं आगन्तुकमलरहितं च सुजातं-सुनिष्मन्नं निरुपहतं-रोगादिभिरनुपहतं देहं-शरीरं धारयन्ति ये ते तथा।

'पसत्यवत्तीस०' छत्रं १ ध्वजः २ यूपः ३ स्तूपः ४ दामिनी रूढिगम्यं ५ कमण्डलु ६ कलशः ७ वापी ८ स्वस्तिकः ९ पताका १० यवः ११ मस्यः १२ कूर्म १३ रथवरः १४ मकरध्वजः १५ अङ्को—मृगः १६ स्थालं १७ अङ्कशः १८ चूतफलकं १९ स्थापनकं २० अमरः २१ लक्ष्मया अभिषेकः २२ तोरणं२३ मेदिनी २४ समुद्रः २५ प्रधानमन्दिरं २६ गिरिवरः २७ वरदर्पणः २८ लीलायमानगजः २९ वृषभः ३० सिंहः ३१ चामरं ३२, एतानि प्रशस्तानि द्वात्रिंशल्लक्षणानि धारयन्ति येते तथा, कनकशिलातलमिव उञ्चलं प्रशस्तं समतलं—अविषमरूपं उपचितं—मांसलं विस्तीर्णपृथुलं—अतिविस्तीर्णं वक्षोह्रदयं येषां ते तथा, श्रीवत्सेन अङ्कितं वक्षो येषां ते तथा, पुरवरस्य परिघा—अवद्धा अर्गला तद्वत् वर्तितौ—वृत्तौ भुजौ—बाह् येषां ते तथा।

भुजगेश्वरो-भुजगराजः तस्य विपुलो-महान् यो भोगः-शरीरं तद्वत् आदीयत इत्यादानः-आदेयो रम्यो यः परिधः-अर्गला 'उच्छूढ' ति स्वस्थानाद् अविक्षाते - निष्काशितः तद्वच्च दीर्घी बाह् येषां ते तथा, युगसिन्नभौ-यूपसदेशौ पीनौ-मांसलौ रितदौ-रमणीयौ पीवरौ-महान्तौ प्रकोष्ठौ-कलाचिकादेशौ, तथा संस्थिताः-संस्थानविशेषवन्तः उपचिताः-सुनिचिताः घनाः -बहुप्रदेशाः स्थिराः-सुबद्धा स्नायुभि सुष्ठु बद्धाः सुवृताः-अतिशयेन वर्तुलाः सुन्धिः:-सुघनाः लद्यः-मनोज्ञाः पर्वसन्ध्यश्च- पर्वास्थिसंधानानि येषां ते तथा, रक्ततलौ-लोहिताधोभागौ 'उवचिय'ति औपचियकौ पचयनिर्वृतौ उपचितौ वा मृदुकौ-कोमलौ मांसवन्तौ सुजातौ-सुनिष्पत्रौ लक्षणप्रशस्तौ-प्रशस्तस्वस्तिकचक्रगदाशंखकल्पवृक्षचन्द्रादित्यादिचिह्नो अच्छिद्रजालौ-अविरलाङ्गुलिसमुदायौ पाणी-करौ येषां ते तथा।

- पीवराः-उपचिता वृत्ताः-वर्तुलाः सुजाताः-सुनिष्पन्नाः कोमलाः वराः अङ्गुल्यःकरशाखा येषां ते तथा, ताम्राः—अरुणाः तिलनाः—प्रतलाः शुचयः—पिवत्रा रुचिरा—दीप्ताः
लिग्धा—अरुक्षाः नखा—नखराः येषांतेतथा, चन्द्रइव पाणिरेखा—हस्तरेखायेषांते चन्द्रपाणिरेखाः,
एवं सूर्यपाणि- रेखाः शंखपाणिरेखाः स्वस्तिकपाणिरेखाः चक्रपाणिरेखाः, एतदेवानन्तरोक्तं
विशेषणपञ्चकं तद्रशस्तताप्रकर्षप्रतिपादनाय सङ्गहवचनेनाह—राशिरविशङ्खचक्रस्वस्तिकरूपाः
विभक्ता—विभागवत्यः सुविरचिताः—सुकृताः पाणिषुरेखाः येषां तेतथा, वरमहिषवराहसिंहशार्दूलवृषभनागवरवत् विपुलौ—प्रतिपूर्णो उन्नतौ—तुङगौ मृदुकौ—कोमलौ द्वौ स्कन्धौ येषां ते तथा
वरमहिषः—सैरभेयः वराहः—शूकरःशार्दूलो—व्याघः नागवरो—गजवरः, चत्वार्यङ्गुलानि
स्वाङ्गुलापेक्षया सुष्ठु प्रमाणं यस्याः कम्बुचरेण च—प्रधानशङ्केन सद्दशी-उन्नतत्वविश्रय योगाभ्यां
समाना ग्रीवो-कण्ठो येषां ते तथा,

अवस्थितानि-नहीयमानानि न वर्द्धमानानि सुविभक्तानि चित्राणि च-शोभया

अदभुतभूतानि श्मश्रूणि-कूर्चकेशा येषां ते तथा, मांसलं संस्थितं प्रशस्तं शार्दूलस्येव विपुलं हनु-चिबुकं येषाते तथा, 'ओयविय'त्ति परिकर्मितं यच्छिलाप्रवालं-विदुमं बिम्बफलं-गोल्हाफलं तत्सित्रभः-सद्दशो रक्तत्वेन अधरोष्ठः-अधस्तनदन्तच्छदो येषां ते तथा, पाण्डुरं यच्छिशशकलं-चन्द्रखण्डं तद्वत् विमलः-आगन्तुकमलरिहतः निर्मलः-स्वाभाविकमलरिहतो यः शङ्कः तद्वत् गोक्षीरफेनवत् 'कुंद'त्ति कुन्दपुष्पवत् दकरजोवद् मृणालिकावत्-पद्मिनीमूलवत् धवला दन्तश्रेणि-दशनपङ्क्तर्येषां ते तथा ।

अखण्डदन्ताः—परिपूर्णदशनाः अस्फुटितदन्ताः—राजिरहितदन्ताः अविरलदन्ताः सुिस्निग्धदन्ताः—अरूक्षदन्ताः सुजातदन्ताः—सुनिष्मन्नदन्ताः, एकोदन्तो यस्या श्रेण्या सा एकदन्ता सा श्रेणिः येषां ते तथा ता इव दन्तानामितधनत्वादेकदन्तत्वादेकदन्तश्रेणिस्तेषामिति भावः, अनेकदन्ताः द्वात्रिंशद्दन्ता इति भावः, यद्वा एका—एकाकार दन्तश्रेणिर्येषां ते एकदन्तश्रेणयः ते इव परस्परं अनुपलक्ष्यमाणदन्तविभागत्वात् अनेकदेवन्ताः येषां ते अनेकदन्ता, एवं नामाविरलदन्ता यथा अनेकदन्ता अपि सन्तः एकाकारदन्तपङ्क्यः इव लक्ष्यंते इति भावः, हुतवहेन—अग्निना निध्मति—निर्दग्धं धौतं—प्रक्षालितमलं तम्नं च—उष्णं यत् तपनीयं—सुवर्णविशेषः तद्वत् रक्ततलं—लोहितलपं तालु च—काकुदं जिह्वा च—रसना येषां ते तथा ।

'सर'त्त अत्र योज्यं सारसवत्—पिक्षविशेषवत् मधुरः स्वरः—शब्दो येषां ते तथा, नवमेघवत् गम्भीरः स्वरो येषां ते तथा, क्रौंचस्य-पिक्षविशेषस्येव निर्घोषो येषां ते तथा, दुन्दुभिवत्—भेरीवत् स्वरो येषां ते तथा, तत्र स्वरः—शब्दः षड्जः १ ऋषभः २ गान्धार ३ मध्यम ४ पश्चम ५ धैवत ६ निषाद ७ रूपो वा एषां विस्तरस्वरूपं स्थानाङ्गानुयोगद्वारतोऽवगन्तव्यमिति, घण्टानुप्रवृत्तरिणतिमिव यः शब्दः स घोष उच्यते, नितरां घोषः निर्घोष इति, गरुडस्येव—सुण्णस्येव आयता—दीर्घा ऋज्वी—सरला तुङ्गा—उन्नता नासा—घोणा येषां ते तथा, अवदालितं—रिविकरणैः विकाशितं यत् पुण्डरीकं—सितपद्यं तद्वद्वं—मुखं येषां ते तथा। 'कोकासिय'ति विकसिते प्रायः समुदित्तत्वातेषां धवले—सितेपुण्डरीकं 'पत्रले' पक्ष्मवती अक्षिणी—लोचने येषां ते तथा, आनामितं—ईषन्नामितं यद्यापं—धनुः तद्वद् रुचिरे—शोभने कृष्णचिकुरराजिसुसंस्थिते कुन्नापि कृष्णा भूराजि सुसंस्थिते संगते आयते—दीर्घे सुजाते—सुनिष्यन्ने भूवौ येषां ते तथा।

आलीनौ नतु टप्परौ प्रमाणयुक्तौ—उपपन्नप्रमाणौ श्रवणौकर्णौ येषां ते तथा अत एव सुश्रवणाः सुष्ठुश्रवणं—शब्दोपलंभो येषां ते तथा, पीनौ—मांसलौ कपोललक्षणौ देशभागौ वदनस्या-वयौ येषां ते तथा, अचिरोद्गतः समग्रः—समूप्रणः सुस्निग्धः चन्द्रः—शशी तस्यार्द्धवत् संस्थितं—संस्थानं यस्य ललाटस्य तत्तथा तदेवंविधं 'निडाल'ति ललाटं—भालं येषां ते अचिरोदगत-समग्रसुस्निग्धचन्द्रार्धसंस्थितललाटाः, उडुपतिरिव—चन्द्र इव प्रतिपूर्णं सौम्यं वदनं येषां ते उडुपतिप्रतिपूर्णसौम्यवदनाः, छत्राकारोत्तमाङ्गदेशा इति कण्ठयं, घनो—लोहमुदगरस्त-द्वित्रचितं—निबिडं यद्वा घनं—अतिशयेन निचितं सुबद्धं स्नायुभि लक्षणोन्नतं—महालक्षणं कूटागारिनभं—सिशखरभवनतुल्यं निरुपमिण्डिकेव वर्तुलत्वेन पिण्डिकायमानं अग्रशिरः—शिरोऽग्रं येषां ते घननिचितसुबद्धलक्षणोन्नतकूटागारिनभनिरुपमिण्डिकाग्रशिरसः।

हुतवहेन-अग्निना निर्ध्मातं धीतं तप्तं च यत्तपनीयं-रक्तवर्णसुवर्णं तद्वतु 'केसंत'ति

मध्यकेशाः केशभूमि—मस्तकत्वग् येषां ते हुतवहनिध्मितधौततप्ततपनीयकेशान्तकेशभूमयः, शाल्मली—वृक्षविशेषः सचप्रतीत एव तस्य बोडं-फलं तहत् छोटिता अपि घना निचिता—अतिशयेन निचिताः शाल्मलीबोण्डघननिचितच्छोटिताः, ते हि युगलधार्मिकाः केशपाशं न कुर्वन्ति परिज्ञाना- भावात् केवलं छोटिता अपि तथा स्वभावतया शाल्मलीबोण्डाकारवत् घननिचिता अवितष्ठन्ते तत एतदविशेषणोपादानं, तथा मृदवः—अकर्कशाः विशदा—निर्मलाः सूक्ष्माः—श्रुक्षणाः लक्षणा— लक्षणवन्तः प्रशस्ताः—प्रशंसाऽऽस्पदीभूताः सुगन्धयः—परमगन्धकलिताः अत एव सुन्दराः तथा भुजमोचको—रलविशेषः भृङ्गः—चतुरिन्द्रियपिक्षविशेषः नीलो—मरकतमणि कञ्जलंप्रतीतं प्रहृष्यः—प्रमुदितो यो भ्रमरगणः प्रहृष्टभ्रमरगणः प्रहृष्टो हि भ्रमरगणस्तारुण्यावस्थायां भवित तदानीं चातिकृष्ण इति प्रहृष्यहणं तहत् स्निग्धाः—कालकान्तयः भुजमोचकभृङ्गनीलकञ्जलप्रहृष्टभ्रमरगणिकाः तथा निक्रम्बाः—निक्रस्बीभूताः सन्तः निचिताः।

अविकीर्णा कुञ्चिताः—ईषतकुटिलाः प्रदक्षिणावर्ताश्च मूर्धिन शिरोजाः—केशा येषां ते शाल्मलीबोण्डघननिचितच्छोटितमृदुविशदप्रशस्तस्क्ष्मलक्षणसुगन्धिसुन्दरभुजमोच-कभृङ्गनीलकञ्जलप्रहृष्टभ्रमगणस्निग्ध निरम्बनिचितप्रदक्षिणावर्तमूर्धाशिरोजसः, लक्षणानि—स्वस्तिकादीनि व्यञ्जनानि—मषतिलकादीनि गुणाः—क्षान्त्यादयस्तैरुपपेता—युक्ताः लक्षणव्यञ्जन गुणोपपेताः, तथा मानोन्मानप्रमाणैः प्रतिपूर्णानि सुजातानि—जन्मदोषरहितानि सर्वाण्यङ्गानि—अवयवाः यत्र तदेवंविधं सुन्दरं अङ्गं—शरीरं येषां ते तथा, तत्र मानं—जलद्रोणप्रमाणता, सा चैवं—जलभृकुष्पे प्रभातव्ये पुरुषे उपवेशिते यञ्चलं—तोयं निर्गच्छिति तद् यदि द्रोणमानं भवित तदा सपुरुषो मानोपपन्न इत्युच्यते, तत्र २५६ पलप्रमाणं द्रोणमानमिति, उन्मानं—तुलाऽऽरोपित-स्यार्द्धभारप्रमाणता, भारमानं यथा।

॥ १॥ षट्सर्षपैर्यवस्त्वेको, गुञ्जैका च यवैस्त्रीभिः ।
 गुञ्जात्रयेण वल्लःस्यात्, गद्याणे ते च षोडश ॥
 पलञ्च दश गद्याणैत्वेषां सार्द्धशतैर्मणं ।
 मणैर्दशभिरेका च, घटिका कथिता बुधैः ॥

घटिभिर्दशिभस्ताभिरेको भारः प्रकीर्तितः'' इति, प्रमाणं पुनः आत्माङ्गुलेन अष्टोत्तरश-ताङ्गुलोच्छ्रयता, शशिवत् सीम्य आकारः कान्तं—कमनीयं प्रियं—प्रेमावहं दर्शनं च येषां ते तथा, स्वभावत एव शृङ्गारं—शृङ्गाररूपं चारु—प्रधानं रूपं—वेषो येषां ते तथा, 'प्रासादीयाः' प्रासादाय— मनःप्रसत्तये हितास्तत्कारित्वात् प्रासादीयाः—मनःप्रह्मत्तिकारिण इति भावः १ दर्शनीयाः— दर्शनयोग्याः यान् पश्यतश्चक्षुषीन श्रमं गच्छत इत्यर्थः २ अभि—सर्वेषां द्रष्टणां मनःप्रसादानुकूलतया अभिमुखं रूपं येषां ते अभिरूपाः अत्यन्तकमनीया इति भावः ३ अथ एव प्रतिरूपाः प्रति विशिष्टं असाधारणं रूपं येषां ते प्रातरूपाः, यद्वा प्रतिक्षणं नवं नविमव रूपं येषां ते प्रतिरूपाः।

तेमनुष्याः 'णं' वाक्यालङ्कारेओघः—प्रवाहः तद्वत्स्वरोयेषां तेओघस्वराः, मेघस्येवातिदीर्घ स्वरोयेषां ते मेघस्यराः, हंसस्येव मधुरः स्वरोयेषां ते हंसस्वराः, क्रौंचस्येवाप्रयासविनिर्गतोऽपि दीर्घदेशव्यापी स्वरोयेषां ते क्रौंचस्वराः, नन्दि—द्वादशतूर्यसङ्घातस्तद्वत् स्वरोयेषां ते नन्दिस्वराः, नन्दा इव घोषो—नादोयेषां ते नन्दिघोषाः, सिंहस्येव प्रभृतदेशव्यापी स्वरोयेषां ते सिंहस्वराः सिंहघोषाः मञ्ज-प्रियः स्वरो येषां ते मञ्जस्वराः मञ्ज घोषो येषां ते मञ्जघोषाः, एतदेव पदद्वयेन व्याचष्टे-सुस्वराः सुसवरघोषाः, अनुलोबः-अनुकूलो वायुवेगः-शरीरान्तर्वर्तिवातजवो येषां ते अनुलोमवायुवेगाः, वायुगुल्मरहितोदरमध्यप्रदेशा इति भावः ।

कड्डः-प्रक्षिविशेषः तस्येव ग्रहणि-गुदाशयो नीरोगवर्चस्कतया येषां ते कङ्कग्रहणयः, कपोतस्येव-पिक्षिविशेषस्य परिणामः-आहारपाको येषां ते कपोतपरिणामाः, कपोतस्य हि जठराग्नि पाषाणलवानिप जरयतीति श्रुति, एवं तेषामिप अत्यर्गलाहारग्रहणेऽपि न जातुचिद्याजीर्णदोषो भवतीति, शकुनेरिव-पिक्षणइव पुरीषोत्सर्गेनिर्लेपतया 'फोसं'ति फोसः-अपानदेशः 'फुस उत्सर्गे' फुसन्ति-पुरीषमुत्सृजन्ति अनेनेति व्युत्पत्तः, तथा पृष्ठं-प्रतीतं अन्तरे च-पृष्ठोदर्ध्योरनतराले पाश्विवत्यर्थ ऊरू-जङ्के चेति द्वन्द्वस्ते परिणता-विशिष्टपरिणामवन्तो येषां ते शकुनिष्फोसपृष्ठान्तरोरुपरिणताः, पद्मं-कमलं उत्पलं-नीलोत्पलं यद्वा पद्मं-पद्मकामिधानं गन्धद्रव्यं उत्पलं च-उत्पलकुष्ठं तयोः गन्धन-सौरभेण सद्दशः-समो यो निश्वासस्तेन सुरिभ-सुगन्धि वदनं-मुखं येषां ते पद्मोत्पलगन्धसद्दशनिश्वाससुरिभवदनाः 'छवी'ति छविमन्तः उद्दीहिन्वर्णया सुकुमालया च त्वचा युक्ता इति भावः।

निरातङ्का-नीरोगा इत्यर्थः उत्तमा-उत्तमलक्षणोपेताः प्रशस्ताः अतिशेषा-कर्मभूमिक-मनुष्यापेक्षया अतिशायिनी अत एव निरुपमा-उपमारिहता तनुः—शरीरं येषां ते उत्तमप्रश-स्तातिशेषनिरुपमतनवः, एतदेव सविशेषमाह—'जल्लमल' ० याति च लगित चेति जल्लः पृषोद-रादित्वाश्चिष्पत्ति स्वल्पप्रयत्नापनेयः स चासौ मलश्च जल्लमलः स च कलङ्कं च-दुष्टतिलकादिकं स्वेदश्च-प्रस्वेदः रजश्च-रेणुः दोषः—मालिन्यकारिणी चेष्टा तेन वर्जितं निरुपलेपं च-मूत्रविष्ठाद्युपलेपरिहतं शरीरं येषां ते जल्लमलकलङ्कस्वेदरजोदोषवर्जितनिरुपलेपशरीराः, सूत्रे च वर्जितं निरुपलेपं च-मूत्रविष्ठाद्युपलेपरिहतं शरीरं येषां ते जल्लमलकलङ्कस्वेदरजोदोषवर्जित-निरुपलेपशरीराः, सूत्रे चनिरुपलेपशब्दस्य परिनपतः प्राकृतत्वात्, छायया—शरीरप्रभया उद्योति-तमङ्गं—शरीरं अंगं च—प्रत्यङ्गं येषां ते तथा । वज्रऋषभनाराचं संहननं येषां ते वज्रऋषभना-राचसंहननाः, समचतुरस्न च तत् संस्थानं च समचतुरस्नसंस्थानं तेन संस्थिताः समचतुरस्नसंस्थान-संस्थिताः, अनयोरग्ने व्याख्यां करिष्यामीति, षट् धनुःसहस्नाणि अवसर्पिणीप्रथमारकापेक्षया ऊर्ध्वमुद्यत्वेन प्रज्ञप्ता इति, धनुःस्वरूपं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तमै यथा—

अनंताणं सुहुमपरमाणुपोग्गलसमुदयसमागमेणं वावहारिए परमाणू निष्फञ्जति, तत्यं नो सत्यं संकामइ, अनंताणं वावहारियपरमाणूणं समुदयसिमइसमागमेणं वावहारिए परमाणू निष्फञ्जति, तत्थं णो सत्यं संकामइ, अनंताणं वावहारियपरमाणूणं समुदयसिमइसमागमेणं सा एगा उसण्हसिण्हियाति वा अड उसण्हसिण्हियाउ सा एगा सण्हसिण्हिया अड सण्हसिण्हिया सा एगा उद्धरेणू अड उद्धरेणू सा एगा तसरेणू अड तसरेणू सा एगा रहरेणू अड रहरेणूं एगे देवकुरुउत्तरकुराणं मणुयाणं वालग्गे अड देवकुरुउत्तरकुरुवाग्गासे एगे हरिवासरम्मगवासाणं मणुयाणं वालग्गे, एवं रम्मयहेरण्णहेमवएरण्णवयाणं मणुस्साणं पुट्विवदेहअवरिवदेहाणं मणुस्साणं वालग्गा सा एगा लिक्खा अड लिक्खाओ सा एगा जूया अड जूआओ से एगे जवमज्झे अड जवमज्झे से एगे अंगुले एतेणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाइं पाओ बारस

अंगुलाइं वितत्थी चउवीस अंगुलाइं रयणी अडयालीसअंगुलाइं कुच्छी छण्णउअंगुलाइं से एगे अक्खेति वा दंडेति वा धणुति वा जुएति वा मुसलेति वा नालियाति वा, एतेणं धनुप्पमाणेणं दो धनुस्सहस्साइं गाउयमिति ।

तथा ते प्रथमारकमनुष्याः षट्पश्चाशदिधकि द्विपृष्ठकरण्डकशताः प्रज्ञप्ताः तीर्थङ्करैरिति, तथातुवरीप्रमाणाहाराः षण्मासावशेषे आयुषि स्त्रपुरुषयुगलप्रसवाः एकोनपश्चाशि द्विनापत्यपालका दिनत्रये आहारेच्छाः १, द्वितीयारकेतु द्विक्रोशोद्याः १२८ पृष्ठकरण्डकाः चतुःषिदिनापत्यपालकाः बदरप्रमाणाहारकाः दिनद्वये आहारेच्छवः २, तृतीये अरके क्रोशोद्याः ६४ पृष्ठकरण्डकाः ७९ दिनापत्यपालकाः आमलकप्रमाणाहारकाः एकान्तराहारेच्छकाः ३, षट्पश्चाशदन्तर्द्विपेतु मनुष्याः अष्टधनुःशतप्रमाणशरीरोच्छ्याः चतुर्थाशिनः चतुःषिष्टिपृष्ठरण्डकाः एकोनाशीतिदिनानि कृतापत्यरक्षाः पल्योपमासंख्येयभागायुषः, तथा सर्वेऽि तत्परिभोगपराङमुखाः सत्यिप मणिकनकमौक्तिकादिके ममत्वाभिनिवेशरिहताः युगलक्षेत्रे विस्रसात एव शाल्यादीनि धान्या-दीन्यपजायन्ते परं न ते मनुष्यादीनां परिभोगाय, दंशमशकयूकादयः चन्द्रसूर्योपरागादयश्च न पवन्तीति।

तथा ते मनुष्याः 'णं' वाक्यालङ्कारे प्रकृत्या—स्वभावेन भद्रकाः परानुपतापहेतुकायवाङ्गनश्चेष्टाः प्रकृत्या—स्वभावेन न तु परोपदेशतः विनीताः—विनययुक्ताः प्रकृतिविनीताः प्रकृत्या
उपशान्ताः प्रकृत्युपशान्ताः प्रकृत्यैव प्रतनवः—अतिमन्दीभूताः क्रोधमानमायालोभा येषां ते तथा,
अत एव मृदु—मनोङ्गंपरिणामसुकावहं यन्मार्दवं तेनसम्पन्नाः मृदुमार्दवसम्पन्नाः न कपटमार्दवोपेता
इत्यर्थः, आ—समन्तात् सर्वासुक्रियासुलीना—गुप्ता आलीनाः—नोल्वणचेष्टाकारिण इत्यर्थः भद्रकाः—
सकलतत्क्षेत्रोचितकल्याणभाविनः विनीताः—बृहत्पु रुषविनयकरणशीलाः अल्पेच्छाः—
मणिकनकादिविषयप्रतिबन्धरहिताः अत एव 'असंनि॰' न विद्यते सन्निधिक्तपः सश्चयो येषां ते
तथा अचण्डा—न तीव्रकोपाः असिमिषकृषिवाणिज्यविवर्जिताः, तत्र अस्युपलक्षिताः सेवकाः
पुरुषाः असयः मध्युपलक्षिता लेखनजीविनः मषयः कृषिरिति कृषिकर्मोपजीविनः, वाणिज्यमिति—वणिगजनोचितवाणिज्यकलोपजीविनः एते न भवन्ति, तेषां सर्वेषां अहमिन्द्रत्वात् इति,
'विडिमान्तरेषु' कल्पद्रुमशाखान्तरेषु प्रासादाद्याकृतिषु निवसनं—आकालमावासो येषां ते विडिमान्तरिवासिनः, ईप्सितान्—मनोवाञ्छितान् कामान्—शब्दादीन् कामयन्ते इत्येवंशीलाः
ईप्तितकामकामिनः गेहाकारेषु—गृहसदृशेषु वृक्षेषु—कल्पद्रुमेषु कृतो—निष्पादितः निलयः—आवासः
यैस्ते गेहाकारवृक्षकृतनिलयाः, गृहाकारकल्पवृक्षसूचनेनान्येऽपि सूचिता द्रष्टव्याः ।

यदुक्तं प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ यथा-मत्ताङ्गदाः १ भृताङ्गाः २ त्रुटिताङ्गाः ३ दीपाङ्गाः ४ ज्योतिरङ्गाः ५ चित्राङ्गाः ६ चित्ररसाः ७ मण्यङ्गाः ८ गेहाकाराः ९ अनग्नाः १०।

तत्र मत्ताङ्गदानां फलानि विशिष्टानि विशिष्टबलवीर्यकान्तिहेतुविस्नसापरिणत-सरससुगन्धिविविधपरिपाकागतहृद्यमद्यपरिपूर्णानि स्फुटित्वा २ मद्यं मुश्चन्तीति १, भृताङ्गाः यथेह मणिकनकरजतादिमयविचित्रभाजनानि दृश्यन्ते तथैव विस्नसापरिणतैः स्थालक-द्योलकंसकरकादिभिर्भाजनैरिव फलैरुपशोभमानाः प्रेक्ष्यन्ते २, त्रुटिताङ्गेषु सङ्गतानि सम्यग् यथोक्तरीत्या सम्बद्धानि त्रुटितानि—आतोद्यानि बहुप्रकाराणि ततविततघनशूषिरकाहलकादीनि ३, दीपाङ्गाः यथेह स्निग्धं प्रज्वलन्यः काश्चनमय्यो दीपिका उद्योतं कुर्वाणा ६१यन्ते तदब्त् दीपाङ्गाः विस्नसापरिणताः प्रकृष्टोद्दयोतेन सर्वमुद्योतयन्तो वर्तन्ते ४, ज्योतिषिकाः सूर्यमण्डलिक् स्वतेजसा सर्वमपि भासयन्तः सन्तीति ५।

चित्राङ्गेषु माल्यमनेकप्रकारसरससुरिभनानावर्णकुसुमदामरूपं भवति ६, चित्ररसाः भोजनार्थाय भवन्ति, कोऽर्थ ? —विशिष्टदलिककलमशालिशालनकाः पक्षात्रप्रभृतिभ्योऽ-तीवापितिमतस्वादुतादिगुणोपेतेन्द्रियबलपुष्टिहेतुस्वादुभोज्यपदार्थपिरपूर्णे फलमध्यैविंगः जमानाश्चित्ररसाः संतिष्ठन्ते इति ७ मण्यङ्गेषु वराणि भूषणानि विस्नसापिरणतानि कटककेयूरकुण्डलादीन्याभरणानि भवन्ति ८, गेहाकारनामकेषु कल्पदुमेषु विस्नसापिरणामत एव प्रांशुप्राकारोपः गूढसुखारोहसोपानपङ्किविचित्रशालोचितकान्तानि अनेकसमप्रकटापवरककुट्टिमतलाद्यलङ्क तानि नानाविधानि निकेतनानि भवन्ति ९, अनग्नेषु कल्पपादपेषु अत्यर्थबहुप्रकाराणि वस्त्रणि विस्नसात एवातिसूक्ष्मकुमारदेवदूष्यानुकाराणि मनोहारीणि मनोहारीणि निर्मलानि उपजायन्त इति १०।

'पुढिवपुष्फे'ति पृथिवीपुष्पफलाहाराः पृथिवी पुष्पफलानि च कल्पद्धमाणामाहारो येषां तेतथा, 'तेमणुयगणा' ते मनुजगमाः—युगलधार्मिकवृन्दाः 'णं' वाक्यालङ्कारेप्रज्ञप्ता जगदीश्वरैः, यदुक्तं जीवाभिगमवृत्तौ हे भगवन् ! पृथिव्याः कीद्दशः आस्वादः ? , भगवानाह—हे गौतम! यथा गोक्षीरं चातुरक्यं—चतुःस्थानपरिणामपर्यन्तं, तद्यैवं—गवां पुण्ड्रदेशोद्भवेश्चचारिणीतं अनातङ्कानां कृष्णानां यखीरं १ तदन्याभ्यः कृष्णगोम्य एव यथोक्तगुणाभ्यः पानं वीयते २ तस्तिरमप्येवंभूताभ्योऽन्याभ्यः ३ तस्तीरमप्यन्याभ्यः ४ इति चतुःस्थानपरिणामपर्यन्तं, अये त्वेवमाहुः—पुण्ड्रेश्चचारिणीनां गवां लक्षस्य क्षीरमद्धार्द्धक्रमेण दीयते यावदेकस्याः क्षीरं तद्यातुरक्यमिति, एवंभूतं यद्यातुरक्यंगोक्षीरंखण्डगुडमत्त्यण्डिकोपनीतंमन्दान्निकथितं, इतोऽपि पृथिव्याः आस्वादः इष्टतर इति, कल्पपादपसत्कानां पुष्पफलानां तु कीद्दश आस्वादः ? , यथ चक्रतिनः एकान्तसुखावहं भोजनं लक्षनिष्यन्नं शुभवर्णरसगन्धस्पर्शयुक्तं आस्वादनीयं अन्तिवृद्धिकरं उत्साहवृद्धिकरं मन्यधजनकं, इतोऽपि चक्रवर्तिभोजनादिष्टतर एवास्वाद इति ।

मू. (६५) आसी य समणाउसो ! पुब्बि मणुयाण छिन्विहे संघयणे, तंजहा—वज्जिरिसहनारः यसंघयणे १ रिसहनारायसं० २ नाराय० ३ अद्धनारायसं० ४ कीलियसं० ५ छेवहसंघयणे ६ संपइ खलु आउसो ! मणुयाणं छेवहे संघयणे वहइ आसी य आउसो ! पुन्वि मणुयाणं छिबो. संठाणे, तंजहा—समवतुरंसे १ नग्गोहपरिमंडले २ सादि ३ खुजे ४ वामणे ५ हुंडे ६, संपइ ख्रु आउसो ! मणुयाणं हुंडे संठाणं वहइ ।

षृ. तथा 'आसी य समणा' आसन् हे श्रमण ! हे गौतम ! हे आयुष्मन् ! पूर्वं मनुजानं षडिवधानि 'संघयणे'ित संहननानि इद्धइद्धतरादयः शरीरबन्धा इत्यर्थः, तद्यथा—वज्ञर्षभनारां १ ऋषभनारांचं २ नारांचं ३ अर्द्धनारांचं ४ कीलिका ५ सेवार्त्तं ६, वज्रादीनां कोऽर्थः ?- ऋषभः—अस्थिद्धयस्यावेष्टकः पट्टः १ वज्रमिव वज्रं—कीलिका १ नारांचं—उभयतो मर्कटबन्धः ३ ततो द्वयोरस्थोरुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्था वेष्टितयोरुपिर तदिले । त्रयभेदि कीलिकाकारं वज्राख्यमस्थियन्त्रं तद्वज्रर्षभनारांचं १ कीलिकारिहतं ऋषभनारांचं १ पट्टाहितं केवलमर्कटबन्धं नारांचं ३ यत्रैकपार्श्वं मर्कटबन्धोऽपरपार्श्वं चकीलिका तदर्धनारां

४ यत्रास्थीनि च कीलिकामात्रबद्धानि तत्कीलि काख्यं ५ यत्र चास्थीनि परस्परपर्यन्तसंस्पर्शरूप-सेवामात्रेण व्याप्तानि नित्य स्नेहाभ्यङ्गादिपरिशीलनमपेक्षन्ते तत् सेवया ऋतं—व्याप्तं सेवार्त्तं ६ ।

सम्प्रति—इदानीं पश्चमारके खलु—निश्चये हे आयुष्मन्! मनुजानां सेवार्तं संहननं वर्त्ततं, तत्र श्रीवीरात्सहत्यधिकशत १७० वर्षेश्रीस्थूलभद्रेस्वगंगते चरमाणि चत्वारि पूर्वाणि आद्यसंत्थान-माद्यसंहननं महाप्राणध्यानं च गतं, तथा श्रीवीरात् ५८४ वर्षे श्रीवज्रे दशमं पूर्वं संहननचतुष्कं च गतिमिति । तथा आसन् हे आयुष्मन्! पूर्वं मनुजानां षडिवधानि 'संठाणे'ित्त सन्तिष्ठन्ति प्राणिन एभिकारविशेषेरिति संस्थानानि, तद्यथा— 'समचतुरंसे'ित्त समं—नाभेरुपर्यधश्च सकलपुरुषलक्षणोपेतावयवतया तुल्यं तद्य तद्यतुरस्न च—अन्यूनाधिकाश्चतस्प्रऽप्यस्रयो यस्य तत्समचतुरस्न, अस्रयश्च पर्यक्कासनोपविष्टस्य जानुनोरन्तरमासनस्य ललाटोपरिभागस्य चान्तरं दक्षिणस्कन्धवामजानुनोरन्तरं वामस्कन्धदिक्षणजानुनोश्चान्तरमिति संस्थानं—आकारः समचतुरस्नसंस्थानं १ न्यग्रोधवत्परिमण्डलं यस्य यथा न्यग्रोधउपरिमण्डलमुपरिविस्तारबहुलमिति भावः २ आदिरिहोत्सेधाख्यो नाभेरधस्तनो देहभागो गृह्यते ततः सह आदिना—नाभेरधस्तनभागेन यथोक्तप्रभाणलक्षणेन वर्त्तते इति सादि उत्सेधब-हुलमिति भावः, इदमुक्तं भवति—

यत् संस्थानं नाभेरधः प्रमाणोपपत्रमुपरि हीनं तत् सादीति ३ यत्र शिरोग्रीवाहस्तपादादिकं यथोक्तप्रमाणलक्षणोपेतं न पृष्ठयुदरादि तत् कुब्जं ४ यत् पुनरुरउदरपृष्ठयादिप्रमाणलणोपेतं शिरोग्रीवाहस्तपादादिकं च हीनं तद् वामनं ५ यत्र तु सर्वेऽप्यवयवाः प्रमाणलक्षणपरिभ्रष्टास्तत् हुंडं ६, सम्प्रति खलु-निश्चये हे आयुष्मन्! मनुजानां हुण्डं संस्थानं वर्त्तते, अथोपदेशं ददातीत्याह-

मू. (६६) संघयणं संठाणं उद्यतं आउयं च मणुयाणं । अनुसमयं परिहायइ ओसप्पिणिकालदोसेणं ।।

षृ. 'संघयण०' संहननं संस्थानं शरीरादेरुद्यत्वम्-उच्छ्यमानं आयुश्च मनुजानां चकारादन्येषां अपि अनुसमयं-समयं समयं प्रति परिहीयते अवसर्पिणीकालदोषेणेति ।

मू. (६७) कोहमयमायलोभा उस्सन्नं वहुए य मणुयाणं । कूडतुलकूडमाणा तेणऽणुमाणेण सव्वंति ।।

वृ. 'कोहमा॰' क्रोधमानमायालोभाश्च उस्सन्नं-प्रवाहेण वर्द्धन्ते-पूर्वमनुष्यापेक्षया विशेषतो वर्धन्ते, मनुष्याणां कूटतुलानि-कूटतोलनाद्युपकरणानि कूटमानानि-कूटकुडवप्रस्थादिमानानि व वर्द्धन्ते तेन कूटतुलादिनाऽनुमाने-अनुसारेण 'सव्वं'ति क्रयाणकवाणिज्यादिकं कूटं वर्द्धते इति ॥

पू. (६८) विसमा अञ्ज तुलाओ विसमाणि य जणवेसु माणाणि । विसमा रायकुलाइं तेण उ विसमाइं वासाइं ।।

वृ. 'विसo' विषमाः अर्पणायान्याः ग्रहणायान्याश्च अद्य दुष्यमाकाले तुला तथा जनपदेषु-मगधादिदेशेषु मानानि-कुडवसेतिकादिप्रमाणानि विषमाणि-असमानि जातानि, चशब्दादनेकप्रकारवश्चनानि, तथा विषमाणि-अनेकान्यायकारकाणि राजकुलानि वर्त्तन्ते, अथ

तेन कारणेन तुशब्दोऽप्यर्थं वर्षाण्यपि–संवत्सराण्यपि विषमाणि–दुःखरूपाणि जातानीति॥

मू. (६९) विसमेसु य वासेसुं हुंति असाराइं ओसहिबलाइं। ओसहिदुब्बल्लेण य आउं परिहायइ नराणं।।

षृ. 'विसमे॰' विषमेषु सर्षेषु सत्सु भवन्ति असाराणि-सारवर्जितानि औषधिबलानि-गोधूमादिवीर्याणि, औषधिदूर्बलत्वेन नराणामन्येषामपि आयु:-जीवितं परिहीयते-शीव्रंक्षीयते इति ॥

मू. (७०) एवं परिहायमाणे लोए चंदुव्य कालपक्खम्मि । जे धम्मिया मणुस्सा सुजीवियं जीवियं तेसि ।।

षृ. 'एवं' एवमुक्तप्रकारेण परिहीयमाने लोके कृष्ण पक्षे चन्द्रवत् ये धार्मिकाः –धर्मयुक्ताः मनुष्यास्तेषां जीवितं –जीवितकालः सुजीवितं –सुष्ठु जीवितं ज्ञातव्यमिति ॥

अथ शतवर्षायुःपुरुषस्य कियंतो युगायनादयो भवन्तीति दर्शयन्नाह-

मू. (७१) आउसो! से जहा नाम ए केइ पुरिसे ण्हाए कयबलकम्मे क्रयकोऊयमंगल-पायच्छिते सिरिस ण्हाए कंठेमालाकडे आविद्धमणिसुवन्ने अहयसुमहम्घवत्थपरिहिए चंदणोिकन्निन्नगायसरीरे सरससुरिगंधगोसीसचंदनानुलित्तगते सुइमालावन्नगविलेवणे कप्पियहारद्धहारतिसरयपालंबपलंबमाणे किडसुत्तयसुकयसोहे पिणद्धगेविज्ञअंगुलिज्ञग-लिव्यंगयलित्यकयाभरणे नानामणिकणगरयणकडगतुडियथंभियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुंडलुजोवियाणणे मउडिदन्निसिरए हारुत्थयसकयरइयवच्छेपालंबपलंबमाणसुकयपडउत्तरिज्ञे मुद्दियापिंगलंगुलिए नानामणिकणगरयणविमलमहरिहनिउणोवियमिसिमिसंतविरइय-सुसिलइविसिड्टलडुआविद्धवीरवले, किं बहुणा? कप्परुक्खोविव अलंकियविभूसिए सुइपयए भवित्ता अम्मापियरो अभिवादयिज्ञा।।

तए णं तं पुरिसं अम्मापियरो एवं वइञ्जा—जीव पुत्ता ! वाससयंति, तंपियाइं तस्स नो बहुयं भवइ, कम्हा ?, वाससयं जीवंतो वीसं जुगाइं जीवइ, वीसइं जुगाइं जीवंतो दो अयणसयाइं जीवइ, दो अयणसयाइं जीवंतो छ उउसयाइं जीवइ, छ उउसयाइं जीवंतो बारस माससयाइं जीवइ, बारस माससयाइं जीवदो, वज्वीसं पक्खसयाइं जीवतो छत्तीसं राइंदियसहस्साइं जीवंतो दस असीयाइं मुहुत्तसयसहस्साइं जीवंतो चत्तारि उस्सासकोडीसए सत्त य कोडीओ अयडालीसं च सयसहस्साइं जीवंतो चत्तारि उसासकोडीसए जाव चतालीसं च उसाससहस्साइं जीवंतो अद्धतेवीसं तंडुलबाहे भुंजइ।।

कहमाउसो ! अद्धतेवीसं तंदुलवाहे भुंजइ ।, गोयमा ! दुब्बलाए खंडियाणं बलियाए छिडियाणं खयरमुसलपद्धाहयाणं ववगयतुसकिणयाणं अखंडाणं अफुडियाणं फलगसरियाणं एक्केक्कबीयाणं अद्धतेरसपिलयाणं पत्थएणं, सेवियणं पत्थए मागहए कल्लं पत्थो सायं पत्थो चउसड्डी तंदुलसाहस्सीओ मागहओ पत्थओ बिसाहस्सिएणं कवलेणं बत्तीसं कवला पुरिसस्स आहारो अड्डावीसं इत्थीयाए चउवीसं पंडगस्स, एवामेव आउसो ! एयाए गणणाए दो असइओ पसई दो पसईओ सेइआ होइ चत्तारि सेइआ कुलओ चतारि कुलया पत्थो चत्तारि पत्था आढगं सड्डीए आढयाण जहन्नए कुंभे असीइए आढयाणं मिन्झिमे कुंभे आढयसयं उक्कोसए कुंभे अडेव

आढगसयाणि बाहो, एएणं बाहप्पमाणेणं अद्धतेवीसं तंदुलबाहे भुंजइ ।। (ते य गणियनिद्दिद्वा)

षृ 'आउसो! सेजहा' ० हे आयुष्मन्! सयथानामको—यस्रकारनामा देवदत्तादिनामेत्यर्थः, अथवा 'से' इति सः यथेति ६ष्टान्तार्थः नामेति सम्भावनायां ए इति वाक्यालङ्कारे कश्चित् पुरुषः सातः—कृतस्नानः स्नानानन्तरं कृतं—निष्पादितं बलिकर्म—स्वगृहदेवतानां पूजा येन सः कृतबलिकर्मा, तथा कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तार्थ—दुःस्वप्नादिविधातार्थ-पवश्यकरणीयत्वाद्येन स तथा, तत्र कौतुकानि—मषीतिलकादीनि मङ्गलानि तु—सिद्धार्थक-दध्यक्षतदूर्वाङ्करादीनि, शिरसि—उत्तमाङ्गे स्नातः—कृतस्नानः, पूर्वं देशस्नानमुक्तमिह तु सर्वस्नानिति न पौनरुक्त्यं, कण्ठे—ग्रीवायां 'मालकडे'ति कृता माला—पुष्पमाला येन स कृतमालः प्राकृतत्वात् 'मालकडे'ति, आविद्धानि—परिहितानि मणिसुवर्णानि येन स तथा, तत्र 'मणि'ति मणिमयानि भूषणानि एवं सुवर्णमयानीति, अहतं—मलमूषकादिभिरनुपहतं प्रत्यग्रमित्यर्थ सुमहार्घ्यं—बहुमूल्यं वस्त्र परिहितं येन स तथा, चन्दनेन—श्रीखण्डेनोत्कीर्णं—चर्चितं गात्रं—शरीरं येन स तथा, सरसेन—रसयुक्तेन सुरिभगन्थेन—सुष्ठु गन्धयुक्तेन गोशीर्षचन्दनेन—हरिचन्दनेन 'अन्विति' अतिशयेन लिसं—विलेपनरूपं कृतं गात्रं—शरीरं यस्य स तथा, शुचिनी—पवित्रे माला—पुष्पमाला वर्णकं विलेपनं च—मण्डनकारि कुङ्कमादिविलेपनं यस्य स तथा।

कल्पितो-विन्यस्तो हारः अद्यदशसिकोऽधेहारो-नवसिकः त्रिसरकं-प्रतीतमेव यस्य स तथा, प्रालंबो-झुम्बनकं प्रलम्बमानो यस्य स तथा, किटसूत्रेण-कठ्याभरणविशेषेण सुष्ठु कृता शोभा यस्य स तथा, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः, अथवा कल्पितहारादिभिः सुष्ठु कृता शोभा यस्य स तथा, पिनद्धानि-पिरिहितानि ग्रैबेयकाङ्गुलीयकानि कण्ठकाख्योर्मिकाख्यानि शेमसतथा, तथा 'लल्यिंगय'ति लल्तिताङ्गके-शोभमानशरीरे अन्यान्यपि लल्तितानि-शोभनानि कृतानि-न्यस्तानि आभरणानि-सारभूषणानि यस्य स तथा, ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः, नानामणिकनकरत्नानां कठकत्रुटिकैःहस्तबाह्मभरणविशेषेः बहुत्वात् स्तम्भिताविव स्तम्भितौ मुजौ यस्य स तथा, अधिकरूपेण सश्रीकः-सशोभो यः स तथा, कुण्डलाभ्यां-कर्णाभरणाम्यामुद्योतितं-उद्योतं प्रापितमाननं-मुखं यस्य स तथा, मुकुटदीप्तशिरस्कः, हारेणावस्तृतं-आच्छादितं तेनैव सुष्ठु कृतं रतिदं च वक्षः-उरो यस्यासौ हारावस्तृतसुकृतरतिदवक्षाः (क्षसः), मलम्बन-दीर्घेण प्रलम्बमानेन च सुष्ठु कृतं पटेन तु उत्तरीयं-उत्तरासङ्गो येन स तथा।

-मुद्रिकाः-अङ्गुल्याभरणानि ताभि पिङ्गलाः-किपला अङ्गुलयो यस्य स तथा, नानामणिकनकरलैर्विमलानि-विगतमलानि महार्हाणि-महार्घाणि निपुणेन शिल्पिना 'उविय'त्ति परिकर्मितानि 'मिसिमिसिंत'ति दीप्यमानानि यानि विरचितानि-निर्वृत्तानि सुश्लिष्टानि—सुसन्धीनि विशिष्टानिअन्येभ्यो विशेषवन्ति लष्टानि-मनोहराणि आविद्धानि-परिहितानि वीरवलयानि पेन सतथा, सुभटो हियदि कश्चिदन्योऽप्यस्ति वीरव्रतधारी तदा असौ मां विजित्य मोचयत्वेतानि क्लयानीति स्पर्धयन् यानि कटकानि परिधाति तानि वीरवलयानीत्युच्यन्ते, किं बहुना वर्णितेनेति शेषः, कल्पवृक्ष इवालङ्कृ तोदलादिभिर्विभूषितश्च फलादिभिः एवमसाविप मुकुटादिभिरलङ्कृतो विभूषितश्च भवति वस्त्रादिभिरिति, शुचिपदं-पवित्रस्थानिमत्यर्थः, भूत्वा भूयः अम्बापितरौ-भातापितरावभिवादयते-पादयोः प्रणिपातं करोतीत्यर्थः।

ततः-अभिवादनानन्तरं 'न'भिति वाक्यालङ्कारे तं पुरुषं-स्वपुत्रलक्षणं मातापितरौ एवं वदेतां-कथयतां इत्यर्थः-हे पुत्र! त्वं जीव वर्षशतमिति, अध यदि तस्य पुत्रस्य वर्षशतप्रमाणमायुः स्यात् तदा स जीवति नान्यथेति, तदिपच आयुः 'आइं'ति अलङ्कारे तस्य-वर्षशतायुःपुरुषस्य न बहुकं-वर्षशताधिकं भवति, कस्मात् ?

यस्माद् वर्षशतं जीवन् विंशतियुगान्येव जीवति निरुपक्रमायुष्कत्वात्, तत्र युगं-चन्द्रादिवर्षपश्चात्मकमिति १ विंशतियुगानि जीवन् पुरुषः द्वे अयनशते जीवति, तत्रायं षण्मासात्मकमिति २ द्वे अयनशते जीवश्चीवः षड् ऋतुशतानि जीवति, तत्रर्तु मासद्वयात्मकः ३ षड् ऋतुशतानि जीवन् जन्तुर्द्वादश मासशतानि जीवति द्वादश मासशतानि जीवन् प्राणी चतुर्विंशतिपक्षशतानि जीवति २४०० चतुर्विंशतिपक्षशतानि जीवन् षट्त्रिंशदहोरात्रसहस्राणि जीवति सत्त्वः ३६०००, ६ षट्त्रिंशदहोरात्रसहस्राणि जीवन् असुमान् दश मुहूर्त्तलक्षाण्य-शीतिमुहूर्त्तसहस्राणि १०८०००० (च) जीवति ७ दशलक्षमुहूर्त्ताण्यशीतिमुहूर्त्तसहस्राणि (च) जीवन् देहधारी चत्वार्युच्छ्वासकोटिशतानि सप्तकोटीः अष्टचत्वारिंशच्छतसहस्राणि चत्वारिंश शत्सहस्राणि च जीवति देहमृत् ४०७८८४००००, ८ चत्वार्युच्छ्वासकोटिशतानियावच्चत्वारिंश-दुच्छ्वाससहस्राणि जीवन् सार्धद्वाविंशतिं तन्दुलवाहान् वक्ष्यमाणस्वरूपान् भुनक्ति।

कथम्? –हे आयुष्मन्! –हे सिद्धार्थनन्दनं! सार्धद्वाविंशतितन्दुलवाहान् मुनक्ति संसारीति हे गौतमं! दुर्वलिकया स्त्रिया खण्डितानां बलवत्या रामया छटितानां सूर्पीदिना खदिरमुशलप्रत्याहः तानामपगततुषकणिकानामखण्डानां – सम्पूर्णावयवानामस्फुटितानां – राजि रहितानां 'फलगसिरयाणं'ति फलकविनीतानां कर्करादिकर्षणेनैकैकबीजानां वीननार्थं पृथक् पृथकतानामित्यर्थः, एवंविधानां सार्धद्वादशपलानां तन्दुलानां प्रस्थको भवति, 'णं' वाक्यालङ्कारे, पलमानं यथा—पञ्चभिर्गुञ्जाभिर्माणः षोडशमाषैः कर्षः अशीतिगुञ्जाप्रमाणङ्ग्यर्थः स यदिकनकस्त्रता सुवर्णसंज्ञः नान्यस्य रजतादेरिति, चतुर्भिः कर्षः पलमिति विंशत्यिकशतत्रयगुञ्जाप्रमाणमित्यर्थः ३२०, सोऽपि च प्रस्थकः मगधे भवो मागध इत्युच्यते, 'कल्लं'ति श्वः प्रातः काल इत्यर्थः, प्रस्थे भवति भोजनायेति १ 'साय'मिति सन्ध्यायां प्रस्थो भोजनायेति २।

एकस्मिन् मागधके प्रस्थके कित तन्तुला भवन्तीत्याह—'चउसिंडि' चतुःषष्टितनुले साहिप्रको मागधः प्रस्थो भवत्येकः, एकः कवलः कितिभि तन्तुलैः स्यादित्याह—'बिसाहिस्रिणं कवलेणं'ति द्विसाहिप्रिकेण तन्दुलेन कवलो भवित, तत्र गुञाः कित भवित्ति?, यथा—एकविंशत्यिक कशतप्रमाणाः किञ्चित्र्यूना एका गुञा चेति, अनेन कवलमानेन पुरुषस्य द्वात्रिंशत्कवलले आहारो भवित १ स्त्रिया अद्यविंशतिकवल्लप आहारः २ पण्डकस्य—नपुंसकस्य चतुर्विंशतिकवल्लप आहारः ३ पण्डकस्य—नपुंसकस्य चतुर्विंशतिकवल्लप आहारः ३ 'एवामेव'ति उक्तप्रकारेण वक्ष्यमाणप्रकारेण च हे आयुष्मन्! एतया गणन्य एतसूर्वोक्तं मानं भविति ॥

अधासत्यादिमानपूर्वकमष्टाविंशतिसहस्राधिकलक्षतन्दुलमानं चतुःषष्टिकवलप्रमा एवंविधंप्रस्थद्वयंप्रतिदिनं भुअन् शतवर्षेणकित तन्दुलवाहान्कित तन्दुलांश्च भुनक्तीत्याह-असईउपसई'इत्यादि, धान्यभृतोऽवाङ्कुखीकृतोहस्तोऽसतीत्युच्यते द्वाभ्यामसतीभ्यां प्रसृति द्वाभ्यां प्रसृतिभ्यां सेतिका भवति २चतसृभिः सेतिकाभि कुडवः ३ चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः चतुर्भिः प्रस्थैराढकः ५ षष्ट्याऽऽढकैर्जघन्यकुम्भः ६ अशीत्याऽऽढकैर्मध्यमकुम्भः ७ आढकशतेनोत्कृष्टः कुम्भः ८, अष्टभिराढकशतैर्वाहो भवति ९, अनेन वाहप्रमाणेन सार्धद्वाविंशतिं तन्दुलवाहान् भुनक्ति वर्षशतेनेति ।

मू. (७२) 'चत्तारि य कोडिसया सिंह चेव य हवंति कोडीओ। असीइं च तंदुलसयसहस्सा हवंतित्तिमक्खायं ४६०८०००००।।

मू. (७३) तं एवं अद्धतेवीसं तंदुलबाहे भुंजंतो अद्धछ्डे मुग्गकुंभे भुंजइ, अद्धछ्डे मुग्गकुंभे भुंजंतो चउवीसं नेहाढगसयाइं भुंजइ, चउवीसं नेहाढगसयाइं भुंजंतो छत्तीसं लवणपलसहस्साइं भुंजइ।

छत्तीसं लवणपलसहस्साई भुंजंतो छप्पडगसाडगसयाई नियंसेइ दोमासिएण परियट्टएणं मासिएण वा परियट्टेणं बारस पडसाडगसयाई नियंसेइ, एवामेव आउसो ! वाससयाउयस्स सव्वं गणियं तुलियं मेवियं नेहलवणभोयणच्छायणंपि।। एयं गणियप्पमाणं दुविहं भणियं महरिसीहिं, जस्सत्थि तस्स गुणिञ्जइ जस्स नत्थि तस्स किं गणिञ्जइ ।।

वृ, तांश्च वाहप्रमाणतन्दुलान् गणियत्वा—सङ्ख्यां कृत्वा निर्दिष्टाः—कथिताः, यथा—चत्वारि कोटिशतानि षष्टिश्चैव कोटयः अशीतिस्तन्दुलशतसहस्राणि भवन्तीत्याख्यातं—कथितं १, कथं, एकेन प्रस्थेन चतुः षष्टितन्दुलसहस्राणि भवन्ति, प्रस्थद्वेयनाष्टाविंशतिसहस्राधिकं लक्षं भवित, प्रतिदिनं द्विभीजनेन उक्तप्रमाणान् तन्दुलान् भुक्ते इति, कतं अष्टाविंशतिसहस्राधिकलक्षं ? वर्षशतस्य षट्त्रिंशहिनसहस्रमानत्वात् षट्त्रिंशत्सहस्रेर्गुण्यन्ते ४६०८ शून्यानि पश्च भवन्ति, चत्वारि कोटिशतानि षष्टि भुंक्ते सार्धपश्चं मृद्गकुंभान् भुञ्जन् चतुर्विंशतिं स्नेहाढकशतानि भुंक्ते चतुर्विंशतिरनेहाढकशतानि भुंक्ते चतुर्विंशतिरनेहाढकशतानि भुञ्जन् षट्त्रिंशस्त्रवणपलसहस्राणि भुनिक्ते, षट्त्रिंशस्त्रवणपलसहस्राणि भुञ्जन् षट् पष्टकशाटकशतानि 'नियंसेइ'ति परिदधाति, द्वाभ्यां मासाभ्यां 'परियष्टएणं'ति परावर्त्तमानत्वेनेति वा अथवा मासिकेन परावर्त्तनेन द्वादश दृशाटकशतानि 'नियंसेइ'ति परिदधाति

'एवामेवे'ति उक्तप्रकारेण हे आयुष्मन् ! वर्षशतायुषः पुरुषस्य सर्वं गणितं तन्दुलप्र-माणादिना तुलितं पलप्रमाणादिना मिवतमसतिप्रसृत्यादिना प्रमाणेन, तत् किमित्याह ? -स्नेहलवणभोजनाच्छादनमिति । एतत् पूर्वोक्तं गणितप्रमाणं द्विधा भणितं महर्षिभि, यस्य जन्तोरस्ति तन्दुलादिकं तस्य गुण्यते, यस्य तु नास्ति तस्य किं गुण्यते ?, न किमपीति ।

मू. (७४) ववहारगणियदिष्ठं सुहुमं निच्छयगयं मुणेयव्वं । जइ एयं निव एयं विसमा गणणा मुणेयव्वा ।।

षु. 'ववहार' गाथा, व्यवहारगिमतं एतद् ६ छं-स्थूलन्यायमङ्गीकृत्य कथितं मुनिभिः सूक्ष्मं-सूक्ष्मगणितं निश्चियगतं ज्ञातव्यं, यद्येतित्रश्चयगतं भवति तदैतद् व्यवहारगणितं नास्त्येव, अतो विषमा गणना ज्ञातव्येति ॥

मू. (७५) कालो परमनिरुद्धो अविभन्नो तं तु जाण समयं तु । समया य असंखिजा हवंति उस्सासनिस्सासे ।।

वृ. अथ पूर्वोक्तं समयादि स्वरूपमाह-'कालो' यः कालः परमनिरुद्धः-अत्यन्तसूक्ष्मः अविभाज्यो-विभागीकर्तुमशक्यस्तमेव कालं-समयं जानीहि त्वं, चशब्दादसङ्ख्य- समयात्मिकाऽऽवलिकाऽपि ज्ञेया, एकस्मिन्निश्वासोच्छ्वासेऽसङ्ख्येयाः समया भवन्ति ॥

मू. (७६) हहस्स अणवगल्लस्स, निरुवकिहस्स जंतुणो । एगे ऊसासनीसासे, एस पाणुति बुद्यइ।।

वृ. 'हट्ठ०' हृष्टस्य-समर्थस्य 'अणवगल्लस्से'ति रोगरहितस्य 'निरुविकट्टस्से'ति क्लेशरहितस्य जन्तोः-जीवस्यैको निश्वासोच्छ्वासः एषः प्राण इत्युच्यते इति ॥

मू. (७७) सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे । लवाणं सत्तहत्तरीए, एस मुहुत्ते वियाहिए ।।

वृ. 'सत्त**ं**' सप्तिभ प्राणैः स स्तोकः कथ्यते, सप्तभि स्तोकैः स लवः कथ्यते, लवानं सप्तसप्तत्वा एष मुहूर्तो व्याख्यातः ॥

मू. (७८) एगमेगस्स णं भंते ! मुहुत्तस्स केवइया ऊसासा वियाहिया ? , गोयमा !

बृं. 'एगमे॰' एकैकस्य हे भदन्तं ! मुहूर्तस्य कियन्त उच्छ्वासा व्याख्याताः ? हे गौतम!

मू. (७९) तिन्नि सहस्सा सत्त य संयाण तेवत्तरिं च ऊसासा। एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अंतनाणीहिं।।

वृ. 'तिन्नि' गाहा, त्रिभिः सहस्रैः सप्तभि शतैः त्रिसप्तत्योच्छ्वासैः ३७७३ एष मुहूर्तो भिणतः सर्वेरनन्तज्ञानिभिः ॥

मू. (८०) दो नालिया मुहुत्तो सिंहे पुण नालिया अहोरत्तो । पन्नरस अहोरत्ता पक्खो पक्खा दुवे मासो ।।

षृ. 'दो नालि०' द्वाभ्यां नालिकाभ्यां—घटिकाभ्यां मुहूर्तः स्यात्, षष्ट्या नालिकाभिरहोरात्रः, पश्चदशभिरहोरात्रैः पक्षः, द्वाभ्यां पक्षाभ्यां मास इति भावार्थः ॥

मू. (८९) दाडिमपुष्फागारा लोहमई नालिया उ कायव्या । तीसे तलंमि छिद्दं छिद्दपमाणं पुणो वुच्छं ।।

वृ. अथ उक्तनालिकायाः –स्वरूपमाह –दाडिमे'ति दाडिमपुष्पाकार लोहमयी नालिका –घटिका कर्त्तव्या भवति, तस्या नालिकायास्तले –अधोभागे छिद्रं –रन्ध्रं कृतं भवति, छिद्रप्रमाणं पुनः वक्ष्ये शिष्यज्ञानायेति ॥

मू. (८२) छन्नउइपुच्छवाला तिवासजायाए गोतिहाणीए। असंवलिया उज्जा य नायव्वं नालियाछिदं॥

षृ. 'छत्र'ति षन्नविपुच्छवाला—लाङ्गुलकेशाः, कस्याः—'गोतिहाणीए'ति गोवच्छिकायाः, किंभूतायाः ?—'तिवासजायाए'ति त्रिवर्षजातायाः, जन्मतो वर्षत्रयाणि जातानीत्यर्थः, किंभूताः केशाः ?—असंविलताः न खितानखिटिकाकारा जाताः, अत एव ऋजुकाः—सरलाः एषां वालानं घनमेकीभूतानां याद्दशं प्रमाणं भवति ताद्दशं नालिकाच्छिद्रं ज्ञातव्यमिति ॥

मू. (८३) अहवा उ पुच्छवाला दुवासजायाए गयकरेणूए । दो वाला अव्भग्गा नायव्यं नालियाछिद्दं ।।

वृ. 'अहवा' अथवा पुच्छवालौ द्वौ, कस्याः ?-'गयकरेणूए'ति गजकलिभकायाः, किंभूताया?-द्विवर्षजातायाः, किंभूतौ वालौ?-अभग्नौ, अनेन वालद्वयमानेन नालिकाच्छिरं ज्ञातव्यमिति ॥

मू. (८४) अहवा सुवन्नमासा चत्तारि सुवट्टिया घना सूई । चउरंगुलप्पमाणा नायव्यं नालियाछिद्दं ।।

षृ. 'अह वासुo' अथवा चतुर्णां स्वर्णमाषाणां सूचिर्भवति, किंभूता सूचि? -सु-अतिशयेन वर्त्तिता-वर्त्तुलीकृता सुवर्त्तिता घना-निषिडा चतुरङ्गुलप्रमाणा, तत्र माषमानं पश्चगुआप्रमाण-मित्युक्तप्रमाणेन नालिकाच्छिद्रं ज्ञातव्यमिति ॥

मू. (८५) उदगसस नालियाए हवंति दो आढयाओ परिमाणं । उदगं च भाणियव्वं जारिसयं तं पुणौ वुच्छं ।।

षृ. इत्युक्तं घटिकाच्छिद्रप्रमाणम् । अथ घटयां जलप्रमाणमाह—'उदगस्सo'नालिकायां— घटिकायामुदकस्य—जलस्य प्रमाणं द्वावाढकौ भवतः, उदकं याद्दशं भणितव्यं भवति तत्ता६शं पुनर्वक्ष्ये इति 'जारिसयं' तं ।

मू. (८६) उदगं खलु नाय्वं कायव्वं दूसपट्टपरिपूयं। मेहोदगं पसत्रं सारइयं वा गिरिनईए।।

वृ. उदकं—जलं खलु—निश्चये ज्ञातव्यं कर्तव्यं चेति, कीद्दशं कर्तव्यमित्याह—'दूसपट्ट०' दूष्यपरिपूतं, वस्त्रगलितमित्यर्थः, मेघोदकं प्रसन्नमिति निर्मलं, वा—अथवा 'सारय'ति शरत-कालोदुभवं आश्विनकार्त्तिकोदुभवं यद् गिरिनद्या उदकं ज्ञातव्यं, तच्च स्वभावेन निर्मलं भवतीति

मू. (८७) बारस मासा संवच्छरो य पक्खाउ ते उ चउवीसं । तिन्नेव य सिंहसया हवंति राइंदियाणं च ।।

वृ. 'बारस'द्वादशभिर्मासैः संवत्सरस्तस्मिन्संवत्सरे चतुर्विशति पक्षा भवन्ति, तेषु षष्ट्याऽधिकानि त्रीणि शतानि अहोरात्राणि भवन्ति ॥

मू. (८८) एगं च सयसहस्सं तेरस चेव य भवे सहस्साइं। एगं च सयं नउयं हुंति अहोरत्त ऊसासा।।

वृ. 'एगं च' एकं शतसहस्रं-लक्षं त्रयोदश सहस्राणि नवत्यधिकं शतं चाहोरात्रेणैतावन्त उच्छ्वासा भवन्ति १९३९९० इति ॥

मू. (८९) तित्तीस सयसहस्सा पंचानउई भवे सहस्साइं। सत्त य सया अणूणा हवंति मासेण ऊसासा।।

वृ. 'तित्तिस०'त्रयस्त्रिशच्छतसहस्राणि लक्षाणि पञ्चनवति सहस्रणि सप्तशतान्यन्यू-नान्येतावन्तो मासेनोच्छ्वासा भवन्ति ३३९५७००, इति ॥

मू. (९०) चत्तारि य कोडीओ सत्तेव य हुंति सयसहस्साइं। अडयालीससहस्सा चत्तारि सया य वरिसेण।।

मृ. 'चत्तारि०' चतम्रः कोट्यः सप्त लक्षाणि अष्टचत्वारिंशत् सहस्राणि चत्वारि शतानि च ४०७४८४००, इयन्तः वर्षेणोच्छ्वासा भवन्ति ॥

मू. (९९) चत्तारि य कोडिसया सत्त य कोडिओ हुंति अवराओ। अडयाल सयसहस्सा चत्तालीसं सहस्साइं।।

वृ. 'चता०' । चत्वारि कोटिशतानि सप्तकोटयः अपराण्यष्टचत्वारिंशच्छत- सहस्राणि

चत्वारिंशत्सहस्राणि च ४०७ ४८४००००॥

मू. (९२) वाससयाउस्सेए उस्सासा इत्तिया मुणेयव्वा । पिच्छह आउस्स खयं अहोनिसं झिज्झमाणस्स ॥

वृ. वासस० वर्षशतायुषः एते पूर्वोक्ता उच्छ्वासाः 'इतिय'ति इयन्तो ज्ञातव्या इति, भो भव्याः यूयं पश्यत-ज्ञानचक्षुषा विलोकयत आयुषः क्षयमहोरात्रं क्षीयमाणस्य-समये २ आवीचीमरणेन त्रुटयमानस्येति ॥

मू. (९३) राइंदिएण तीसं तु मुहुत्ता नव सयाई मासेणं । हायंति पमत्ताणं न य णं अबुहा वियाणंति ॥

वृ. 'राइ०' अहोरात्रेण त्रिंशन्युहूर्त्ता भवन्ति, मासेन नव शतानि मुहूर्त्तानि, तानि प्रमत्तानां-मद्यादिप्रमादयुक्तानां सुभूमब्रह्मदत्तादीनामिव हीयन्ते, न चाबुधा-मूर्खा विजानन्तीति।।

मू. (९४) तिन्नि सहस्से सगले छच्च सए उडुवरो हरइ आउं । हेमंते गिम्हासु य वासासु य होइ नायव्वं ।।

षृ. 'तिन्नि॰' त्रीणि सहस्राणि षट्शताधिकानि सकलानि-सम्पूर्णानि मूहूर्तानि हेमन्ते-शीतकाले भवन्ति, एतत्प्रभाणमायुर्जीवानां हेमन्ते उडुवरः-सूर्यो हरति, एवं ग्रीष्मे वर्षासु च ज्ञातव्यं भवति, अत्र आर्षत्वेन ग्रीष्मशब्दः स्त्रलिङ्गो बहुवचनान्तश्च, वर्षशब्दस्तु आबन्तत्वेन स्त्रलिङ्गो बहुवचनान्तश्च ।।

मू. (९५) वाससयं परमाऊ इत्तो पन्नास हरइ निद्वाए। इत्तो वीसइ हावइ बालते वृह्वभावे य।

वृ. 'वाससo' साम्प्रतं जीवानां परमायु:—उत्कृष्टजीवितं वर्षशतं प्रवाहेण ज्ञातव्यम्, इतो—वर्षशतात् पञ्चाशद् वर्षाणि निद्रया हरति—गमयति जीवः, इतः—शेषपञ्चाशदवर्षतः विशतिवर्षाणि हीयन्ते—यान्ति प्रमादादिना, कथं?, बालत्वे दशकं वृद्धत्वे च दशकं चेति।

मू. (९६) सीउण्हपंथगमणे खुहापिवासा भयं च सोगे य । नानाविहा य रोगा हवंति तीसाइ पच्छद्धे ।।

षृ. 'सीउ०' शीतोष्णपथगमनानि तथा क्षुत्पिपासा भयं च शोकश्च नानाविधा रोगाश्च भवन्ति, त्रिंशतः पश्चार्धं त्रिंशत्पश्चार्धं पश्चदशवर्षरूपं तस्मिन्, को भावः ? –शेषत्रिंशतो मध्यात् पश्चदश वर्षाणि जीवानां शीतोष्णपथगमनादिभिर्मुधा यान्तीति ॥

मू. (९७) एवं पंचासीई नड्डा पन्नरसमेव जीवंति । जे हुंति वाससइया न य सुलहा वाससयजीवा ।।

मृ. 'एवं०' पूर्वोक्तप्रकारेण पञ्चाशीतिवर्षाणि नष्टानि, धर्मं विना विकथानिद्रालस्यवतां मुधा गतानि, कयं?—निद्रया पञ्चाशद् वर्षाणि ५० बालत्वे दश १० वृद्धभावे दश १० शीतादिभिः पञ्चदश १५, एवं सर्वाणि ८५ इति, ये जीवाः वर्षशतिकाः—वर्षशतप्रमाणा भवन्ति ते जीवाः पञ्चदश वर्षाणि जीवन्ति, अन्येषां वर्षाणां धर्मत्वेनामृतप्रायत्वात्, न च वर्षशतजीविनो जीवाः प्रायः सुलभाः, दुष्प्रापा इत्यर्थः, उक्तं च—'आयुर्वर्षशतं मृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं, तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बाल्ये च वृद्धे गतम् । शेषं व्याधिवियोगदुः खसहितं सेवादिभिर्नीयते, जीवे

वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ! ॥

म्. (९८) एवं निस्सारे माणुसत्तणे जीविए अहिवडंते । न करेह चरणधम्मं पच्छा पच्छाणुताहेहा ।।

वृ. 'एवं०' एवमुक्तप्रकारेण निसारे-असारे मानुषत्वे मनुजत्वे तथा जीविते-आयुषि रलकोटिकोटिभिरप्यप्राप्येऽधिपतित-समये २ क्षयं गच्छति सतीत्यर्थ न कुरुत यूयं चरणधर्म-ज्ञानदर्शनपूर्वकं देशसर्वचारित्रं, हा इति महाखेदे, पश्चाद्-आयुःक्षयानन्तर-मायुःक्षयचरमक्षणे वा पश्चात्तापं-कायवाङ्गनोभिर्महाखेदं करिष्यथ नरकस्थराशिराजवदिति ।

मू. (९९) घुडुंमि सयं मोहे जिणेहिं वरधम्मतित्यमग्गस्स । अत्ताणं च न याणह इह जाया कम्मभूमीए।।

वृ. भव्याः प्रश्नयन्ति – कथं वयं नात्मस्वरूपं जानीम इत्युक्ते गुरुराह' – 'घुडंमि०' धर्मस्य जिनोक्तरूपस्य तीर्थं – पवित्र करणस्थानकं तस्य मार्गो ज्ञानदर्शनचारित्ररूपः वरश्चासौ धर्मतीर्थ-मार्गश्च स तथा तस्मिन्, प्राकृतत्वात् विभक्तिपरिणामः, जिनैः – रागादिजेतृभि स्वयं – आत्मना 'घुट्टंमी'ति कथिते – निरूपिते सित, आत्मानं न यूयं जानीत, क सित ? – मोहे सित – तीव्रमिथ्या-त्विभश्रमोहनीयकर्मोदये सतीत्यर्थः, इह कर्मभूमौ जाता अपि, अपेर्गन्यमानत्वादिति, अस्या अर्थो अन्योऽपि सद्गुरुप्रसादात्कार्य इति ॥

म्. (१००) नइवेगसमं चंचलं जीवियं जुव्चणं च कुसुमसमं । सुक्खं च जमनियत्तं तिन्निवि तुरमाणभुजाइं ।।

वृ. 'नइ०' नदीवेगसमं चपलं जीवितं-आयुः १ यौवनंकुसुमसमं-पुष्पस६शं क्षणेन म्लानत्वापत्तेः २ चपुनः यत्सौख्यं तत् 'अनियत्तं'ति अनित्यं ३, एतानि त्रीण्यपि 'तुरमाणभुजाइं'ति शीघ्रं भोग्यानि 'भज्ञा'इति पाठे तुशीघ्रं भग्नयोग्यानि शीघ्रं भङ्कत्वा यान्तीत्यर्थः ॥

मू. (१०१) एयं खु जरामरणं परिक्खिवइ वग्गुरा व मयजूहं । न य णं पिच्छह पत्तं संमूढा मोहजालेणं ।।

वृ. 'एयं०' एतज़रामरणं 'खु' निश्चये जीवलोकं परिक्षिपति—परिवेष्टयति, (व) इवार्थे, यथा वागुरामृगयूथंपरिक्षिपति, नच पश्यत यूयं प्राप्तं जरामरणं मोहजालेन सम्मूढाः—मोहं गताः,श्रीगौतमप्रतिबोधितदेवशर्मद्विजवदिति ॥

उक्तमायुष्कापेक्षयाऽनित्यत्वं, अय शरीरापेक्षया दर्शयन्नाह--

मू. (१०२) आउसो ! जंपिय इमं सरीरं इहं कंतं पियं मणुत्रं मणामं मणभिरामं थिञ्जं वेसासियं समयं बहुमयं अणुमयं भंडकरंडगसमाणं रयणकरंडओविव सुसंगोवियं चेलपेडाविव सुसंपरिवुडं तिल्लपेडाविव सुसंगो वियं मा णं उण्हं मा णं सीयं मा णं वाला मा णं खुहा मा णं खुहा मा णं पिवासा मा णं चोरा मा णं दंसा मा णं मसगा मा णं वाइ यपित्तियसंभियसंनिवाइयविविहा रोगायंका फुसंतुत्तिकट्ठ एवंपियाई अधुवं अनिययं असासयं चयावचइयं विष्पनासधम्मंपच्छा व पुरा व अवस्सविष्मञ्चइयव्वं ।।

एअस्तिव याइं आउसो ! अनुपुव्वेणं अद्वारस य पिइकरंडगसंधिओ बारस पंसलिया करंडा छप्पंसुलिया कडाहे विहत्थिया कुच्छी चेउरंगुलिया गीवा चेउपलिया जिब्सा दुपलियाणि अच्छीणि चउकवालं सिरं बत्तीसं दंता सत्तंगुलिया जीहा अद्धुडपिलयं हिययं पणवीसं पलाई कालिझं दो अंता पंचवामा पन्नत्ता, तंजहा–थूलंते य १ तनुयंते य २, तत्थ णं जे से थूलंते तेण उद्यारे परिणमइ, तत्थ णं जे से वामे पासे से सुहपरिणामे, तत्थ णं जे से दाहिणे पासे से दुहपरिणामे

आउसो ! इमंमि सरीरए सिंह संधिसयं सतुत्तरं मम्मसयं तिन्नि अद्विदामसयाई नव ण्हारुसयाई सत्त सिरासयाई पंचपेसीसयाई नव धमणीओ नवनउई च रोमकूवसयसहस्साई विणा केसमंसुणा सह केसमंसुणा अद्धुङाओ रोमकूवकोडीओ । आउसो ! इमंमि सरीरए सट्टी सिरासयं नाभिप्पभवाणं उद्दुगामिणीणं सिरमुवगयाणं जाओ ? रसहरणीओत्ति वुद्धन्ति जाणंसि निरुवधाएणं चक्खुसोयधाणजीहाबलं च भवइ, जाणं सिउवघाएणं चक्खुसोयघाणजीहाबलं उवहम्मइ ।।

आउसो ! इमंमि सरीरए सिंहिंसरासयं नाभिष्प भवाणं अहोगामिणीणं पायतलमुवगयाणं जाणं सि निरुवघाएणं जंघाबलं भवइ, तां से उवघाएणं सीसवेयणा अद्धसीसवेयणा मत्थयसूले अच्छीणि अंधिञ्जंति ।

आउसो ! इमंमि सरीरए सिंहिंसिरासयं नाभिष्यभवाणं तिरियगामिणीणं हत्थतलमुवगयाणं जाणं सि निरुवधाएणं बाहुबलं हवइ, ताणं चेव से उवग्धाएणं पासवेयणा पुष्टिवैयणा कुच्छिवेयणा कुच्छिसूले हवइ ।।

आउसो ! इमस्स जंतुस्स सिडिसिरासयं नाभिष्पभवाणां अहोगामिणीणं गुदप्पविद्वाणं जाणं सि निरुवघाएणं मुत्तपुरीसवाउकम्मं पवत्तइ ताणं चेव उवघाएणं मृत्तपुरीसवाउनिरोहेणं अरिसा खुब्धंतिपंडु रोगो भवइ।

आउसो! इमस्स जंतुस्स पणवीसंसिराओ पित्तधारिणीओ पणवीसंसिराओ सिंभधारिणीओ दस सिराओ सुक्कधारिणीओ सत्त सिरासयाइं पुरिसस्स तीसूणाइं इत्थियाए वीसूणाइं पंडगस्स आउसो! इमस्स जतुस्स रुहिरस्स आढयं वसाए अखाढयं मत्युलुंगस्स पत्थो मुत्तस्स आढयं पुरिसस्स पत्थो पित्तस्स कुडवो सिंभस्स कुडवो सुक्कस्स अखकुडवो, जं जाहे दुइं भवइ तं ताहे अइप माणं भवइ, पश्चकोट्ठे पुरिसे छकोट्ठा इत्थिया नवसोए पुरिसेइक्कारससोया इत्थिया, पश्च पेसीसयाइं पुरिसस्स तीसूणाइं इत्थियाए वीसूणाइं पंडगस्स।

षृ. 'आउसो जं॰' इत्याद्यालापकरूपं सूत्रं, हे आयुष्मन् ! यदिषच इदं शरीरं-वपुः इष्टं इच्छाविषयत्वात् कान्तं कमनीयत्वात् प्रियं प्रेमिनबन्धनत्वात् मनसा ज्ञायते-उपादीयत इति मनोज्ञं मनसा अम्यते-गन्यते इति मनोऽमं मनसोऽभिरामं मनोऽभिरामं सनतकुमारचिक्र वत् स्थैर्यं-स्थैर्यंगुणयोगात् वैश्वासिकं-विश्वासस्थानं संमतं तत्कृतकार्याणां संमतत्वात् बहुमतं बहुष्विप कार्येषु बहुर्वाऽनत्पतया-अस्तोकतया मतं बहुमतं अनु-विप्रियकरणात् पश्चान्मतमनुमतं भाण्डकरण्डकसमानं-आभरणभाजनतुल्यमादेयमित्यर्थः रत्नकरण्डक इव सुसंगोपितं वस्त्रादिभिः चेलपेटेव-वस्त्रभञ्जूषेव सुष्ठु संपरिवृतंनिकपद्रवे स्थाने निवेशितं,गृहस्थावस्थास्थालिभद्रवपुर्वत्, तैलपेटेव-वस्त्रभञ्जूषेव सुष्ठु संपरिवृतंनिकपद्रवे स्थाने निवेशितं,गृहस्थावस्थास्थालिभद्रवपुर्वत्, तैलपेटेव-तैलगोलिकेव सुसंगोपितंभङ्गभयात्, 'तेल्लकेला इव सुसंगोविय'ति पाठान्तरं तैलकेला-तैलाश्रयो भाजनविशेषः सौराष्ट्रप्रसिद्धः सा च सुष्ठु सङ्गोप्या-सङ्गोपनीया भवति अन्यथा लुठित ततश्च तैलहानि स्यादिति ।

'मा णंo' माशब्दो निषेधार्थः 'णं' वाक्यालङ्कारे अथवा 'मा णं'ति मा इदं शरीरमिति व्याख्येयं, ततः सर्वेऽप्युष्णादयो मा स्पृशन्तु 'छुयंतु' भवन्त्वित्यर्थः, 'तिकट्टु' इतिकृत्वा, अथवेत्य-भिसन्धाय पालितमिति शेषः, तत्रोष्मत्वं—ग्रीष्मादावुष्णत्वं शीतं—शीतकालेशीतत्वं व्यालाःश्वापदाः सर्पा वा क्षुद्—बुभुक्षा पिपासा—तृषा चौराः—निशाचराः दंशाः मशकाः एते विकलेन्द्रियजन्तुविशेषाः वातिकपैत्तिकश्लेष्मिकसान्निपातिका विविधरोगातङ्काः रोगाः—कालसहा व्याधयः आतङ्काः—त एव सद्योघातिनः ।

'एवंपि याइ'न्ति एवमुक्तप्रकारेण सिपचेत्यभ्युद्धये 'आइं'इति वाक्यालङ्कारे, इदं शरीरं न ध्रुवमधुवं सूर्योदयवत् न प्रतिनियतकालेऽवश्यं भावि अनियतं—सुरूपादेरि कुरूपादिदर्शनात् हिरितिलकराजसुतिवक्रमकुमारशरीरवत् अशाश्वतं—क्षणं क्षणं प्रति विनश्वरत्वात् सनत्कुमारशरीरवत् 'चयावचइयं'ति इष्टाहारोपभोगतया धृत्युपष्टम्भादौदारिकवर्गणापरमाणूपचयाद्धय-स्तदभावे तिद्धचटनादपचयः चयापचयौ विद्येते यस्य तद्धयापचियकं पुष्टिगलनभाविमत्यर्थः, करकंडुप्रत्येकबुद्धवैराग्यहेतु वृषभशरीरवत्, विप्रणाशो—विनश्वरो धर्म—स्वभावो यस्य तद् विप्रणाशघर्मं, 'पच्छा व'त्ति पश्चाद् विवक्षितकालात् परतः 'पुरा व'त्ति विवक्षितकालात् पूर्वं च, यद्धा 'पच्छापुरा य'ति पाठेतु विवक्षितकालस्य पश्चार्यूर्वं च सर्वदैवेत्यर्थः, अवश्यं 'विष्पचइयव्वं'ति विप्रत्यक्तव्यं त्याज्यमित्यर्थः।

'एयस्सिव याइं'ति एतस्य एतिस्मित्रिप च वा वपुषः वपुषि वा 'आइं'ति वाक्यालङ्कारे 'आउसो'त्ति हे आयुष्मन्! आनुपूर्व्या—अनुक्रमेणाष्ट्रादश पृष्ठिकरण्डकस्य—पृष्ठिवंशस्य सन्धयोग्रिन्धिल्पा भवन्ति, यथा वंशस्य पर्वाणि, तेषु चाष्ट्रादशसु सन्धिषु मध्ये द्वादशभ्यः सन्धिभ्यो द्वादशपांशुलिकाः निर्गत्योभयपाश्र्वावावृत्य वक्षः स्थलमध्योध्ववर्त्यस्थिन लिगत्वा पल्लकाकारत्या परिणमन्ति, अत आह—'बारसo' शरीरे द्वादश पांशुलिकाः निर्गत्य पार्श्वद्वयमावृत्य हदयस्योभयतो वक्षः पश्चारादधस्तात् शिथिलकुक्षेस्तूपरिष्टात्परस्परासंमिलितास्तिष्ठन्ति, अयं च कटाह इत्युच्यते, दे वितस्ती कुक्षिर्भवति, चतुरङ्कुलप्रमाणा ग्रीवा भवति, तौल्येन मगधदेशप्रसिद्धपलेन चत्वार पलानि जिह्ना भवति, अक्षिमांसगोलकौ द्वे पले भवत—, चतुर्भिकपालैः—अस्थिखण्डल्पैः शिरो भवति, मुखेऽशुचिपूर्णे प्रायो द्वात्रिंशद्दन्ता अस्थिखण्डानि भवन्ति ।

'सत्तंगु॰' जिह्ना—मुखाभ्यन्तरवर्तिमांसखण्डरूपा दैर्घ्यणात्माङ्गुलतः सप्ताङ्गुला भवति 'अद्धुइ॰' हृदयान्तरवर्ति मांसखण्डं सार्धपलत्रयं भवति, 'पणवी॰ कालिज्ञं' वक्षोऽन्तर्गूढमांसवि-शेषलपं पश्चविंशति पलानि स्यु, द्वे अत्रे प्रत्येकं पश्चपश्चवामप्रमाणे प्रज्ञसे जिनैः, तद्यथा—स्थूलान्त्रं १ तन्वन्त्रं २, तत्र यत् तत् स्थूलान्त्रं तेनोद्यारः परिणमित, तत्र च यत्तन्वन्त्रं तेन प्रस्रवणं—मूत्रं परिणमित, 'दो पा॰' द्वे पाश्वें प्रज्ञप्ते, तद्यथा—वामपार्श्व १ दक्षिणपार्श्व २ च, तत्र—तयोर्मध्ये यत्तत् वामपार्श्व तत् शुभपरिणामं भवति, तत्र च यत्तद्दक्षिणपार्श्व तत्तुखपरिणामं भवति। तथा 'आउसो !' हे आयुष्मन् शरीरे षष्टि सन्धिशतं ज्ञातव्यं, तत्र सन्धयः—अङ्गुल्याद्यस्थिखण्ड-भेलापकस्थानानि, 'सत्तुत्तरे' सप्तोत्तरं मर्मशतं भवति, तत्र मर्माणि—शङ्काणिकावियरकादीनि 'तित्रि॰' त्रीण्यस्थिदामशतानि—हडुमालाशतानि भवन्ति।

'नव ण्हारुसयाइं'ति स्नायूनां-अस्थिबन्धनशिराणां नव शतानि, 'सत्त०' सप्त

शिराशतानि—स्नसाशतानि, पश्च पेसीशतानि, 'नव ध०' नव धमन्यो—रसवहनाडयः 'नव०' नवनवित रोमकूपशतसहस्राणि रोम्णां—तनुरुहाणां कूपा इव कूपा रोमकूपाः रोमरन्ध्राणीत्यर्थः तेषां नवनवितर्नक्षा इति, विना केशश्मश्रुभि, केशश्मश्रुभिः सहपुनः सार्धास्तिम्र रोमकूपकोटयो भवन्ति मनुष्यशरीरे इति ॥

अय पूर्वोक्तानि शिरासप्तशतानि कयं भवन्तीति सूत्रकार एवाह—'आउसो०' हे आयुष्मन् अस्मिन् शरीरे 'सिंडि' इह पुरुषशरीरेनाभिप्रभवाणि शिराणां—स्नसानां सप्त शतानि भवन्ति, तत्र षष्ट्यधिकं शतं शिराणां नाभिप्रभवाणामूर्ध्वगामिनीनां शिरस्युपागतानां भवन्ति, यास्तु रसहरण्य इत्युच्यन्ते, 'जाणंसि'ति यासामूर्ध्वगामिनीनां शिराणां 'से' तस्य जीवस्य निरुपद्यातेन—अनुग्रहेण चक्षु १श्रोत्र२धाण३जिह्वा४बलं भवति, यासां 'से' तस्योपद्यातेन—विद्यातेन चक्षुश्रोत्रघ्राणजिह्वाबलमुपहन्यते।

तथा 'आउसो' हे आयुष्पन् ! अस्मिन् शरीरे षष्ट्यधिकं शतं १६० शिराणां नाभिप्रभवाणां नाभिरुत्पद्मानामित्यर्थः, अधोगामिनीनां पादतले उपगतानां—प्राप्तानां भवति, यासां निरुपधातेन जङ्काबलं भवति, तासां चैव 'से' तस्य जीवस्योपधातेन—विकारप्राप्तेन शीर्षवेदना—सर्वमस्तकपीडा अर्घशीर्षवेदना मस्तकशूलं च भवति, 'अच्छिणि'ति अक्षिणी—लोचने 'अधिजंति'ति अन्धीभवत इत्यर्थः ॥

तथा 'आउसो०' हे आयुष्मन्! अस्मिन् प्रत्यक्षे शरीरे षष्ट्यधिकं शतं शिराणां नाभिप्रभवाणां तिर्यग्गामिनीनां हस्ततले उपागतानां भवति, यासां निरुपधातेन—निरुपद्रवेण बाहुबलं भवति, तासां चैव 'से' तस्योपधातेन—उपद्रवेण पार्श्ववेदना पृष्ठिवेदना कुक्षिवेदना कुक्षिशूलं च भवति, तथा 'आउ०' हे आयुष्मन्! अस्य जन्तोः षष्ट्यधिकं शतं शिराणां नाभिप्रभवणामधोगामिनीनां गुदप्रविष्टानांभवति, यासां निरुधातेन—उपद्रवाभावेन मूत्रपुरीषवातकर्म—प्रम्नवणकर्म विष्ठाकर्म वायुकर्म प्रवर्तते, मूत्रादिकं सुखेन कर्त्तु शक्यत इत्यर्थः, तासां चैव गुदप्रविष्टशिराणामुपधातेन मूत्रपुरीषवातिनरोधो भवति, निरोधेनाशांसिगुदाङ्कराः 'हरस' इति लोकोक्ति क्षुभ्यन्ति—क्षोभं यान्ति, परमपीडाकरं रुधिरं मुञ्जनीत्यर्थः, भवभावनोक्तकालर्षिवत् पाण्डुरोगश्च भवति।

तथा 'आउसो०' हे आयुष्मन्! अस्य जन्तोः पञ्चविंशतिः शिराः 'सिंभधारिणी'ति श्लेष्मधारिण्यो भवन्ति, 'पंच०' पञ्चविंशति शिराः पित्तधारिण्यः, दशिराः शुक्रधारिण्यः, 'सत्तसि०' पुरुषस्योक्तप्रकारेण सस् शिराशतानि भवन्ति, कथम्? शरीरेऊर्ध्वगामिन्यः १६० अधोगामिन्यः १६० अधोगामिन्यः १६० तिर्यगामिन्यः १६० अधोगामिन्यो गुदप्रविष्ठाः १६० श्लेष्मधारिण्यः २५ पित्तधारिण्यः २५ शुक्रधारिण्यः १०एवं सर्वा ७०० शिराः भवन्ति पुरुषाणां शरीर इति । 'तीसू०' पुरुषोक्ताः यास्तास्त्रशदूनाः स्त्रियाः भवन्ति, सप्तत्यधिकानि षट् शतानि भवन्तीत्यर्थ ६७०, 'वीसू०' पुरुषोक्ता यास्ताः विंशत्युनाः पाण्डकस्याशीत्यधिकानि षट् शतानि भवन्तीत्यर्थ ६८० ॥

अथशरीरे रुधिरादिमानमाह-'आउसो' हे आयुष्मन्! अस्य जन्तोः रुधिरस्याढकं भवति, वसाया अर्धाढकं, 'मत्युलिंगस्से'ति मस्तकभेज्ञकस्य फिप्फिसादेवी प्रस्थः मूत्रस्याढकं पुरीषस्य प्रस्थः पित्तस्य कुडवः श्लेष्मणः कुडवः शुक्रस्यार्धकुडवो भवति, एतद्याढकप्रस्थादिमानंबा-लकुमारतरुणादीनां 'दो असईओ पसई दो प्रसईयो य सेइआ होइ चत्तारि सेईया कुलओ चत्तारि कुलओ पत्थो चत्तारि पत्था आढग'मित्यात्मीय२हस्तेनानेतव्यमिति, 'जं जाहे' यद्रूषिरादिकं यदा दुष्टं भवति तत्तदाऽतिप्रमाणं भवति, अयमाशयः—उक्तमानस्य शुक्रशोणितादेर्हीनाऽऽधिक्यं स्यातत्तत्र वातादिदुषितत्वेनावसेयमिति ।

'पंचo' पश्चकोष्ठः पुरुषः, पुरुषस्य पश्च कोष्ठकाः भवन्ति, षट्कोष्ठा स्त्र, कोष्ठकस्वरूपं सम्प्रदायादवगन्तव्यमिति, नवश्रोत्रः पुरुषः, तत्र कर्णद्वय २ चक्षुर्द्वय २ ध्राणद्वय २ मुख ७ पायू ८ पस्य ९ लक्षणानि इति, एकादशश्रोत्रा स्त्र भवति, पूर्वोक्तानि नव स्तनद्वययुक्तान्येकादश श्रोत्राणि स्त्रणां भवन्तीत्येतन्मानुषीणामुक्तं, गवादीनां तु चतुःस्तनीनां त्रयोदश १३ शूकर्यादीन्नामष्टस्तनीनां सप्तदश १७ निव्याघित एवं, व्याघाते पुनरेकस्तन्या अजाया दश १०, त्रिस्तन्याश्च गोर्द्वादशेति। 'पंच' पुरुषस्य पञ्च पेसीशतानि भवन्ति ५०० त्रिंशदूनानि स्त्रियाः ४७० विंशत्यूनानि पञ्च पेसीशतानि नपुंसकस्य ४८० ॥

उक्तं शरीरस्वरूपं, अधास्यैदासुन्दरत्वं दर्शयन्नाह-

मू. (९०३) अव्भितरंसि कुणिमं जो परिअत्तेउ बाहिरं कुञ्जा । तं असुइं दहुणं सयावि जणणी दुर्गुछिञ्जा ।।

षृ. 'अङ्गितर०' गाथा, 'अङ्गितरंसी'ति शरीरमध्यप्रदेशे 'जो'ति यत् 'कुणिमं' अपवित्रं मांसं वर्तते तन्मांसं 'परियत्तेउ'ति परावर्त्य-परावर्तं कृत्वा यदि बहि-बहिभिग कुर्यात् तदा तन्मांसं 'असुइ' अशुचि-अपवित्रं ६ष्ट्वा स्वका अपि आत्मीया अपि अन्या आस्तां स्वजननी-स्वाम्बा 'दुगुंछिज्ञ'ति जुगुप्सां कुर्यात्–हा! किं मयाऽपवित्रं ६ष्टमिति ॥

मू. (१०४) माणुस्सयं सरीरं पूइयमं मंससुक्रहड्डेणं । परिसंठिवियं सोहड् अच्छायणगंधमञ्जेणं ॥

वृ. 'माणुस्सयं' गाथा, मानुष्यकं-मनुष्यसम्बन्धि शरीरं-वपुः 'पूड्यमं'ति पूतिमत् अपवि-त्रमित्यर्थः, केन ?-मांसशुक्रहड्डेन, हड्डं देश्यमस्थिवाचीति, 'परिसंठवियं'ति विभूषितं सत् 'सोहइ'ति शोभते, केन ?-आच्छादनगन्धमाल्येन, तत्राच्छादनं-वस्त्रादि गन्धः-कर्पूरादि माल्यं-पुष्पमालादि

मू. (१०६) इमंचेव य सरीरं सीसघडीमेयमज्ञमंसिट्टयम्सुलुंगसोणियवालुंडयचम्पकोसना-सियसिंघाणय धीमलालयं अमणुत्रगं सीसघडीभंजियं गलंतनयणं कत्रुट्टगंडतालुयं अवालु-याखिल्लिचिक्तणं चिलिचिलियं दंतमलमइलं बीभच्छदिरसिणिजं अंसलगबाहुलगअंगुलीअगुट्टगन-हसंघिसंघायसंघियमिणं बहुरसियागारं नालखंधच्छिराअणेगण्हारुबहुधमणिसंधिनद्धं पागडउदरकवालं ककखनिक्खुडं ककूखगकिलयं दुरंतं अद्धिभणिसंताणसंतयं सव्वओ समंता परिसवंतं च रोमकूवेहिं सयं असुइं सभावओ परमदुग्गंधि कालिज्ञयअंतिपत्तजरिद्धययफोप्फस-फेफसिपिलिहोदरगुञ्झकुणिमनविष्ठिड्डधिविधिवंतिहययं दुरिहिपित्तिसंभमुत्तोसहाययणं सव्वओ दुरंतं गुञ्झोरुजाणुजंघापायसंघायसंधियं असुइ कुणिमगंधि, एवं चितिज्ञमाणं बीभच्छदिरसिणिजं अधुवं अनिययं असासयं सडणपडणविद्धंसणधम्मं पच्छा व पुरा व अवस्स चइयव्वं निच्छयओ सुद्धुजाण एयं आइनिहणं एरिसं सव्वमणुयाणं देहं एस परमत्थोओ सभावो।।

वृ. 'इमं चेव य' इत्यादि गद्यं, इदमेव च मनुजशरीरं-वपुः शीर्षघटीव मस्तकहडुं

मेदश्च-अस्थिकृत् चतुर्थो धातुरित्यर्थः मज्जा च-शुक्रकरः षष्ठो धातुरित्यर्थः मासं च-पललं तृतीयो धातुरित्यर्थः, अस्थि च-कुल्यं पश्चमो धातुरित्यर्थः मस्तुलुङ्गश्च-मस्तकरनेहः शोणितं च-रुधिरं द्वितीयो धातुरित्यर्थः वालुण्डकश्च-अन्तरशरीरावयवविशेषः चर्मकोशश्च-छिवकोषः नासिकासि- ङ्वानश्च-प्राणमलविशेषः धिडलं च-अन्यदिप शरीरोदभवं निन्धमलं तानि तेषामालयं-गृहमित्यर्थः अमनोज्ञकं-मनोज्ञभाववर्जितं शीर्षघटी-करोटिका तया भिज्ञतं-आक्रान्तमित्यर्थः, गलत्रयनं कर्णोष्ठगण्डतालुकं अवालुया इति लोकोक्तया अवालुखिद्धश्च खील इति जनोक्ति ताभ्यां चिक्कणं-पिच्छलमित्यथः 'चिलिचिलिय'मिति चिगचिगायमानं धर्मावस्थादौ दन्तानां मलं दन्तमलं तेन 'मइल'त् मिलनं-मलीमसमित्यर्थः।

बीमत्सं-भयङ्करं दर्शनं-आकृतिरवलोकनं वा रोदिना कृशावस्थायां यस्य वपुषस्तद् वीमत्संदर्शनं, 'अंसलग'ति अंसयोः-स्कन्धयोः 'बाहुलग'ति बाह्नोः-भुजयोः अहुलीनां-करशाखानां 'अंगुट्टग'ति अहुष्ठयोरहुलयोः नखानां-महाराजानां (करजानां) ये सन्ध्यस्तेषां सङ्घातेन-समूहेन सन्धितमिदं वपुः 'बहुo' बहुरसिकागारं 'नालखंo' नालेन स्कन्धिशराभिः-अंसधमनीभि 'अनेगण्हारु'ति अनेकस्नायुभि-अस्थिबन्धनिशराभिः बहुधमनिभिः-अनेकिशराभिः सन्धिभिः-अस्थिमेलापकस्थानैश्च 'नद्धं'ति नियन्त्रितं प्रकटं-सर्वजनध्यमानमुदरकपालं-जठरकडहळ्ळचं यत्र तत्रकटोदरकपालं, कक्षैव-दोर्मूलमेव निष्कुटं-कोटरं जीर्णशुष्कवृक्षवद् यत्र तत् कक्षनिष्कुटं कक्षायां गच्छन्तीति कक्षागाः अधिकारात्तदगतकुत्सितवालास्तैः कलितं-सदा सहितं कक्षागकिलतं यद्वा कक्षायां भवाः काक्षिकाः-तदगतकेशलतास्ताभि कलितं, 'दुरंतं'ति दुष्टः अन्तो-विनाशः प्रान्तो वा यस्य तद्दुरन्तं-दुष्पूरं, अस्थिधमन्योः सन्तानेन-परम्परया 'संतयं'ति व्यामं यत्तदस्थिधमनिसन्तानसन्ततं ।

सर्वतः—सर्वप्रकारैः समन्ततः—सर्वत्र रोमकूपै—रोमरन्धैः परिस्रवत्—गलगलत् सर्वत्र सच्छिद्रघटवत् चशब्दादन्यैरपि नासिकादिरन्धैः परिस्रवत् 'सयं'ति स्वयमेवाशुचि—अपवित्रं 'सभावउ'ति स्वभावेन परमदुष्टगन्धीति 'कालिज्ञयअंतपित्तजरहिययफोप्फसफेफसपिलिह'ति प्लीहा—गुल्म 'उदर'ति जलोदरं गुह्यकुणिमं—मासं नव छिद्राणि यत्र तत् तथा 'थिविथिवंत'ति द्रिगद्रिगायमानं 'हियय'ति हृदयं यत्र तत् परमयावत् हृदयं नव छिद्राणि तु नयनद्वयकर्ण-द्वयनासिकाद्वयजिद्धाशिश्चापानलक्षणानि 'दुरिह'ति दुर्गन्धानां पित्तसिंभमूत्रलक्षणानामौषधानामायतनं—गृहं सर्वौषधायतनं, रोगादावस्मिन् सर्वौषधप्रक्षेपात्, सर्वत्र—सर्वभागे दुष्टोऽन्तो—विनाशः प्रान्तो वा यस्य तत् सर्वतोदुरन्तं, 'गुह्यो०' गुह्योरुजानुजङ्कापादसङ्कात-सन्धितं—उपस्थसिक्थिनलकीलनलिकनीक्रमणपरस्परमीलनसमूहसीवितं, अशुचिकुणिमस्य—अपवित्रमांसस्य गन्धो यत्र तदशुचिकुणिमगन्धि।

'एवं चि॰' एवं —पूर्वोक्तप्रकारेण चिन्त्यमानं बीभत्सदर्शनीयं भयङ्कररूपं 'अधुवं अनिययं असासयं'चेति पदत्रयस्य व्याख्या पूर्ववत्, 'सडण॰' शटनपतनविध्वंसनधर्मं, तत्र शटनं —कुष्ठादिनाऽ हुल्यादे — पतनं बाह्वादेः खङ्गच्छेदादिना विध्वंसनं — सर्वथा क्षयः एते धर्मा— स्वभावा यस्य तत्त्रया, 'पच्छा व पुरा व अवस्स चङ्चव्वं'ति पूर्ववत् 'निच्छ॰' निश्चयतः सुष्ठु भृशं त्वं 'जाण'ति जानीहि एतन्मनुष्यशरीरं 'आइनिहणं'ति आदिनिधनं सादिसान्तमित्यर्थः,

ईंध्शं पूर्ववर्णितं वक्ष्यमाणं वा सर्वमनुजानां-समस्तमनुष्याणां देहः-शरीरं एषः पूर्वोक्तः शरीरस्य परमार्थतः-तत्वतः स्वभावः ॥ अथ विशेषतः शरीरादेरशुभत्वं दर्शयति-

मू. (१०६) सुक्रंमि सोणियंमि य संभूओ जननिकुच्छिमज्झंमि । तं चेव अमिज्झरसं नवमासे घुंटियं संतो ।।

षृ. 'सुक्कंमि'इत्यादि यावदस्थिमलो तावत् पद्यं, 'सुक्कं ०' जननीकुक्षिमध्ये—मातृजठरान्तरे शुक्ते—वीर्ये शोणिते—लोहिते चशब्दादेकत्र मिलिते सति प्रथमं सम्भूतः—उत्पन्नस्तदेवा-मेध्यरसं—विष्ठारसं 'धुंटियं'ति पिबन् सन् नव मासान् यावत् स्थित इति ॥

मू. (१०७) जोणीमुहनिष्फिडिओ थणगच्छीरेण विद्धओ जाओ। पगईअमिज्झमइओ कह देहो धोइउं सक्को।।

वृ. 'जोणिo' योनिमुखनिस्फिटितः—स्मरमन्दिरकुण्डनिर्गतः 'धणगं'ति स्तनकक्षीरेण वर्धितः-पयोधरदुग्धेन वृद्धिं गतः, प्रकृत्या अमेध्यमयो जातः, एवंविधो देहः कहं 'धोइउं'ति धौतुं-क्षालियतुं शक्यः ॥

मू. (१०८) हा असुइसमुप्पन्ना य निग्गया य जेण चेव दारेणं। सत्ता मोहपसत्ता रमंति तत्थेव असु इदारंमि।।

वृ. 'हा अ०' हा इति खेदे अशुचिसमुत्पन्ना—अपवित्रोत्पन्नाः येनैव द्वारेण निर्गताः चशब्दात् यौवनमापन्नाः सत्वा जीवाः मोहप्रसक्ताः—विषयरक्ताः—रमन्ति—क्रीडन्ति तत्रैव अशुचिद्वारे छेदोक्तसमुद्रप्रसूतकुमारवदिति ॥

एवं शरीराशुचित्वे सति शिष्यः प्रश्नयति-

मू. (१०९) किह ताव घरकुडीरी कईसहस्सेहिं अपरितंतेहिं। विश्वज्ञइ असुइबिलं जघणंति सकञ्जमूढेहिं।।

षृ. 'किह ता०' हे पूज्याः ! कथं तावत् गृहकुड्याः स्त्रीदेहस्येत्यर्थः 'अपिरतंते०' अपिरतान्तैः— अश्रान्तैः—पिरश्रममगणयद्भिः सवकार्यमूढैः—सवस्वार्यमौढ्यगतैः कविसहस्रैः 'जघनं'ति स्त्रीकटेरग्रभागं भगरूपिनत्यर्थः वर्ण्यते—वचनिवस्तरेण विस्तार्यते, किंभूतं जघनं ?-'अशुचिबिलं' परमापवित्रं विवरम्, उक्तं च-''चर्मखण्डं सदाभिन्नं, अपानोदगारवासितम् ।तत्र मूढाः क्षयं यान्ति, प्राणैरपि धनैरपि ॥'' तत्र प्राणैः सत्यक्यादयः क्षयं गताः धनैर्धिमिल्लादयः इति ॥

मू. (९९०) रागेण न जाणंति वराया कलमलस्स निद्धमणं । ताणं परिणंदंता फुल्लं नीलुप्पलवणं व ।।

वृ. 'रागे०' हे शिष्य! रागेण—तीव्रकामरागेण न जानन्ति हृदये चशब्दादन्येषां न कथयन्ति वराकाः—तपस्विनः कलमलस्य—अपवित्रमलस्य निर्धमनं खालू इति 'ता णं'ति 'णं' वाक्यालङ्कारे तत्—जघनं 'परिणंदंति'त्ति परमविषयासक्ता वर्णयन्ति, कथम् ? —वकार इवार्थे, इवोत्प्रेक्षते, फुळं –प्रफुळं विकसितमित्यर्थ नीलोत्पलवनं – इन्दीवरकाननम् !।

मू. (९९९) कित्तियमित्तं वन्ने अमिज्झमइयंमि वच्चसंघाए। रागो हु न कायव्वो विरागमूले सरीरंमि।। षृ. 'कित्तियं' कियन्मात्रं –कियस्रमाणं 'वन्ने'ति वर्णयामि शरीरे –वपुषि, किंभूते अमेध्यं प्रचुरमस्मिन्नित्यमेध्यमये –गूथात्मके इत्यर्थः, वर्चस्कसङ्घाते –परमापवित्रविष्ठासमूहे 'विरागमूले'ति विरुद्धो रागः विरागः मनोजराग इत्यर्थ तस्य मूलं –कारणं कामासक्तानामङ्गारवतीरूपदर्शने चन्द्रप्रद्योतनस्येव, यद्घा विगतो –गतो रागो –मन्मथभावो यस्मात्स विरागः वैराग्यमित्यर्थः तस्य मूलं –कारणं, काष्ठश्रेष्ठेरिव (श्रेष्ठिन इव) तस्मिन् विरागमूले हु यस्मादेवं तस्माद्रागो न कर्त्तव्यः, स्यूलभद्रवज्ञस्वामिजम्बूस्वाम्यादिवत् ॥

मू. (९९२) किमिकुलसयसंकिण्मे असुइमचुक्खे असासयमसारे । सेयमलपुळाडंमी निळ्येयं वच्चह सरीरे ॥

षृ. 'किमि०' कृमिकुलशतसङ्कीर्णे 'असुइमचुक्खे'ति अशुचिके-अपवित्रमलव्याप्ते अचुक्षे-अशुद्धे सर्वथा पवित्रीकर्तुमशक्यत्वात्, अशाश्वते क्षणं क्षणं प्रति विनश्वरत्वात्, असारे-सारवर्जिते 'सेयमलपुव्यडंमि'ति दुर्गन्धस्वेदमलचिगचिगायमाने, एवंविधे शरीरे हेजीवाः यूयं निर्वेदं-वैराग्यं ब्रजत-गच्छत, विक्रमयशोन्पस्येवेति ।

मू. (९९३) दंतमलकत्रगूहगसिंघाणमले य लालमलबहुले । एयारिसे बीभच्छे दुगुंछणिञ्जंमि को रागो ॥

षृ. 'दंतम०' दन्तमलकर्णमलगूथकसिंधानमले चशब्दः शरीरगतानेकप्रकारमलग्रहण-सूचनार्थ लालामलबहुले एता६शे बीभत्से-जुगुप्सनीये सर्वथा निन्धे वपुषि को रागः ॥

मू. (99४) को सङणपङणविकिरिणविद्धंसणचयमपरणधर्म्मामि । देहंमि अहीलासो कुहियकङिणकङ्घभूयंमि ।।

वृ. 'को सड०' देहे-शरीरे कः अभिलाषः-वाञ्छा ?, किंभूते ?-शटनपतन-विकिरणविध्वंसनच्यवनमरणधर्में, तत्र शटनंकुष्ठादिनाऽङ्गुल्यादेः पतनं बाह्वादेः खङ्गच्छेदादिना विगकिरणं-विनश्वरत्वं विध्वंसनं-रोगज्वरादिना जर्जरीकरणं च्यवनं-हस्तपादादेर्देशक्षयः मरणं-सर्वधाक्षयः, पुनः किंभूते ?-कुथितकठिनकाष्ठभूते-विनष्टकर्कशदारुतुन्ये ॥

मू. (९९५) कागसुणगाण भक्खे किमिकुलभत्ते य वाहिभत्ते य। देहंमि मच्छभत्ते सुसाणभत्तंमि को रागो।।

वृ. 'कागसुo' देहे को रागः ? , किंभूते ? –काकश्वानयोः–धूकारिभषणयोः भक्ष्ये–खाई कृमिकुलभक्ते च व्याधिभक्ते च मत्यभक्ते च कचिन्मद्युभतेत्ति मृत्युभक्तमिति श्मशानभक्तं

मू. (९१६) असुई अमिज्झपुत्रं कुणिमकलेवरकुडिं परिसर्वति । आगंतुयसंठवियं नवच्छिड्डमसासयं जाणे ॥

षृ. 'असुइ' अशुचि-सदाऽविशुद्धममेध्यपूर्णं-विष्ठाभूतं कुणिमकलेवरकुडिमांसशि रहडुयोर्गृहं 'परिसर्वति'ति परिस्रवत्-सर्वतो गलत्, आगन्तुकसंस्थापितं-मातापित्रीः शोणितपुद्गलैर्निष्पादितं नवच्छिदं-नवरन्ध्रोपेतमशाशवतं-अस्थिरंएवंविधं वपुस्त्वं जानीहीति

पू. (९९७) पिच्छसि मुहं सतिलयं सविसेसं रायएण अहरेणं । सकडक्खं सविआरं तरलच्छि जुव्यणित्यीए ।।

वृ. 'पिच्छसि' 'जुव्वणित्थीए'ति यौवनस्त्रियाः-तरुण्याः मुखं-तुण्डं त्वं पश्याः

नन्दिषेणशिष्य १ अर्हन्नक २ स्थूलभद्रसतीर्थ्यक ३ वत्, किंभूतं? –सितलकंसपुण्डं सविशेषं –कुट्कुम-कञ्जलादिविशेषसिहतं, केन सह? –रागेण–ताम्बूलादिरागवताऽधरेण–ओष्ठेन सह सकटाक्षं– अर्धवीक्षणसिहतं सविकारं-भूचेष्टासिहतं, यथा तपस्विनामिप मन्मथविकारजनकं, तरले–चपले काकलोचनवत् अक्षिणी यत्र तत्तरलाक्षि इति ॥

मू. (९९८) पिच्छिस बाहिरमट्टं न पिच्छसी उज्जरं कलिमलस्स । मोहेण नद्ययंतो सीसघडीकंजियं पियसि ।।

वृ. 'पिच्छ०' एवं त्वं बहिर्मृष्टं-बहिर्बागमठारितं पश्यसि-सरागद्दृष्टयाऽवलोकयसि, न पश्यसि-अन्धवत्र विलोकयसि 'उज्ञरं'ति मध्यगतं किलमलं-अपवित्रं यद्वा न पश्यसि किलमलस्य-अपवित्रस्य 'उज्जरं'ति निर्जरणं मोहेन-रितमोहोदयेन नृत्यन्-भूतावेष्टित इव वेष्टां कुर्वन् 'सीसघडीकंजियं पियसि'ति मस्तकघटीरसमपवित्रं पिबसि-पानं करोषि चुम्बना-दिप्रकारेणेति ।।

मू. (९९९) सीसघडीनिग्गालं जं निड्डहसी दुगुंछसी जं च । तं चेव रागरत्तो मूढो अइमुच्छिओ पियसि ।।

वृ. 'सीस**ं**' मस्तकोद्भवापवित्ररसं यन्निष्ठीवयसि-धूत्करोषि जुगुप्ससे-कुत्सां करोषीत्यर्थः यज्ञ त्वं तदेव 'रागरत्तो' विषयासक्तः भूढो-महाभोहं गतः अतिभूच्छितः-तीव्रगृद्धिं गतः पिबसि

मू. (९२०) पूड्यसीसकवालं पूड्यनासं च पूड्देहं च । पूड्यिछङ्डविछिङ्कं पूड्यचम्मेण य पिनद्धं ।।

वृ. 'पूइय०' पूतिकशीर्षकपालं-दुर्गन्धिमस्तककर्परं पूतिकनासं-अपवित्रनासिकं पूतिदेहं-दुर्गन्धिगात्रं पूतिकच्छिद्रविवृदधं-अपवित्रलघुविवरवृद्धविवरं पूतिकचर्मणा-अशुमाजिनेन पिनदधं-नियन्त्रितम् ॥

े **मू. (९२९)** अंजणगुसुविसुद्धं ण्हाणुव्यष्टणगुणेहिं सु**कु**मालं । पुप्फुम्मीसियकेसं जणेइ बालस्स तं रागं ।।

वृ. 'अंजण०' अञ्चनगुणसुविशुद्धं –तत्राञ्चनं नोचने कञ्चलं गुणा –नाडकगोफणकरा-खिडकादयः तैः सुष्ठु विशुद्धं –अत्यर्थं शोभायमानं स्नानोदवर्तनगुणैः सुकुमालं तत्र स्नानमनेकधा क्षालनमुद्धर्तनं –िपिष्टिकादिना मालोत्तारणं गुणाः –धूपनादिप्रकाराः यद्धा स्नानोदवर्त्तनाभ्यां गुणास्तैर्मृदुत्वं गतं, पुष्पोन्मिश्चितकेशं –अनेककुसुमवासितकुन्तलं – एवंविधं तन्मुखं मस्तकं शरीरं वा बालस्य – मन्मथकर्कशबाणविद्धत्वेन गतसदसदिववेक (स्य)विकलस्य जनयति –उत्पादयित रागं – मन्मथपारवश्यं येन गुर्वादिकमपि न गणयित, निन्दिषेणाऽऽषाढभूतिमुन्यादिवत् ॥

मू. (९२२) र्ज सीसपूरउत्ति य पुष्फाइं भणंति मंदविन्नाणा । पुष्फाइं चिय ताइं सीसस्स य पूरयं सुणह ॥

वृ. 'जं सी०' मन्दविज्ञाना-मन्मयग्रहग्रथिलीकृताः 'जं'ति यानि पुष्पाणि कुसुमानि शीर्षपूरकं-मस्तकाभरणमिति 'भणंति' कथयन्ति पुष्पाण्येव तानि शीर्षस्य पूरकंश्रृ णुत यूयमिति

मू. (९२३) मेओ वसा य रसिया खेले सिंघाणए य कुभ एयं।

14 12

अह सीसपूरओ भे नियगसरीरम्मि साहीणो ।।

वृ. 'मेउव०' मेदः—अस्थिकृत् वसा—विस्नसा चशब्दोऽनेकशरीरान्तर्गतावयवग्रहणार्थः रिसका—व्रणाद्युत्पन्ना 'खेले'ति कण्ढमुखश्लेष्मा 'सिंघाणए य'ति नासिकाश्लेष्मा 'एयं'ति एतन्मेदादिकं 'छुभ'ति शुपध्वं—मस्तके प्रक्षेपयत अथ शीर्षपूरको 'भे' भवतां निजकशरीरे स्वाधीनः—स्वायत्तो वर्तते ॥

मू. (१२४) सा किर दुप्पडिपूरा वद्यकुडी दुप्पया नवच्छिद्दा । उक्कडगंधविलित्ता बालजणो अइमुच्छियं गिद्धो ॥

वृ. 'सा किर०' सा वर्चस्ककुटी-विष्ठाकुटीरिका 'किर'त्ति निश्चयेन दुष्प्रतिपूरा पूरियतु-मशक्येत्यर्थः, किंभुता ? –िद्धपदा नवच्छिद्रा, उत्कटगन्धविलिप्ता—तीव्रदुर्गन्धव्याप्ता, एवंवधा शरीकुटी वर्त्तते, तां च बालजनो-मूर्खलोकः अतिमूच्छितं यथा स्यात् तथा गृद्धो-लम्पटलं गतः ॥

मू. (९२५) जं पेमरागरत्तो अवयासेऊण गूढमुत्तोलि । दंतमलचिक्कणंगं सीसघडीकंजियं पियसि ॥

वृ. कथं गृद्ध इत्याह—'जं पेम०' यस्मात् प्रेमरागरक्तः—कामरागप्रथिलीकृतो लोक-'अवयासेऊण'त्ति अवकाश्य—प्रकाश्य—प्रकटीकृत्येर्थ 'गूढमुत्तोलिं'ति अपवित्रं रामाभगं पुंश्चिहं वा जुगुप्सनीयं, दन्तानां मलः—पिप्पिका दन्तमलस्तेन सह 'चिक्कणंगं' चिक्कणाङ्गं—चिगचिगाय-मानमङ्गं—शरीरमालिङ्गय च शीर्षघटीकाञ्जिकं—कपालकर्परखट्टरसं चुम्बनादिप्रकारेण 'पियसि'ति पिबसि, अतृमवत् घुंटयसि ॥

मू. (९२६) दंतमुसलेसु गहणं गयाण मंसे य ससयमीयाणं । वालेसुं चमरीणं चम्मनहे दीवियाणं च ॥

षृ. 'दंतमुo' गजानां दन्तमुशलेषु 'गहणं'ति ग्रहणं—आदानं लोकानां वर्तते मांसे चशब्दात् स्नसाश्च ङ्गादौ शशममृगाणां ग्रहणं वर्तते, चमरीणां वालेषु ग्रहणं, द्वीपिकानां चित्रकव्याघ्रादीनां चर्मनखेषु ग्रहणं, चशब्दादनेकतिरश्चामवयवग्रहणं वर्तते।को मावः? —यथा गजादीनां तिरश्चां दन्तादिकं सर्वेषां मोगाय भवति तथा मनुष्यावयवो न मोगाय भवति पश्चादतः कथ्यतेऽनेनादौ जिनधर्मो विधेय इति।।

मू. (९२७) पूइयकाए य इहं चवणमुहे निम्नकालवीसत्यो । आइक्खस सब्भावं किम्मिऽसि गिद्धो तुमं मूढ ॥

षृ. 'पूइ०' इह पूतिककाये—अपवित्रवपुषि च्यवनमुखे—मरणसम्मुखेनित्यकालविश्वस्तः— सदा विश्वासं गतः 'आइक्खसु०' आख्याहि कथय सद्भावं—हार्दं 'किम्हिऽसि'त्ति कस्मादिस गृद्धस्त्वं मूढो—मूर्ख, यद्वा हे मूढ !—मूर्ख ब्रह्मदत्तदशमुखादिवत् ॥

मू. (९२८) दंतावि अकज्ञकरा वालाविव वहुमाण बीभच्छा । चम्मंपि य बीभच्छं भण किं तसि तं गओ रागं ।।

वृ. 'दंता०' दन्ता अप्यकार्यकराः वाला अपि विवर्धमानाः सर्पवद् बीभत्सा भयङ्कराः चर्मापि बीभत्सं मण-कथय किं 'तसि०'ति तस्मिन् शरीरे 'त'मिति त्वं रागं गतः ।।

मू. (९२९) सिंभे पित्ते मुत्ते गूहंमि य वसाइ दंतकुडीसु ।

भणसु किमत्थं तुज्झं असुइंमि विवह्निओ रागो।।

षृ. 'सिंभे' ति० कफेपित्ते-मायुषि मूत्रे-प्रस्नवणे गूथे-विष्ठायां 'वसाइ' ति वसायां स्नसायां 'दंतकुंडीसु' ति हडुभाजने, यद्वाऽनुस्वारोऽलाक्षणिकः दन्तकुडयां, यद्वा 'दंतकुंडीसु' ति दंष्ट्रासु भण-कथय किमर्थं तवाशुचाविप विधितो रागः ? ॥

पू. (९३०) जंघड्टियासु ऊरु पइडिया तडिया कडीपिडी। कडियडिवैढियाई अहारस पिडिअडीणि।।

वृ. 'जंघ०' 'जंघड्डियासु ऊरू'ति जङ्गास्थिकयोरूरू प्रतिष्ठितौ 'पइड्डिया तड्डिया कडीपिड्डी'त्तिअत्रायं पदसम्बन्धः—तयोरूर्वोस्थिता तत्स्थिता कटि—श्रोणिर्मवति, कट्यांप्रतिष्ठिता स्थिता 'पिड्डी'ति पृष्ठिर्मवति कटयस्थिवेष्टितान्यष्टादश पृष्ठयस्थीनि भवन्ति शरीरे इति ॥

मू. (९३९) दो अच्छिअडियाइं सोलस गीवडिया मुणेयव्वा । पिडीपइंडियाओ बारस किल पंसुली हुंति ।।

वृ. 'दो अ०' द्वे अस्यस्थिनी भवतः, षोडश ग्रीवास्थीनि ज्ञातव्यानि, पृष्ठिप्रतिष्ठिताः द्वादश किलेति प्रसिद्धे पंशुल्यो भवन्ति ।।

पू. (९३२) अड्डियकढिणे सिरण्हारुबंधणे मंसचम्मलेवंमि । विद्वाकोडागारे को वद्यघरोवमे रागो ।।

षृ. 'अडिय०' अस्थिभिः 'अढिणे' कठिनेऽस्थिकठिने यद्धा—कठिनान्यस्थिकानि यत्र तत्तथा तस्मिन्, शिरास्नसानां लिध्वराणां बन्धनं यत्र तत्तथा तस्मिन्, मांसचर्मलेपे विष्ठाकोष्ठागारे— वर्षस्कगृहोपमे कलेवरे हे जीव! तव को रागः ॥

मू. (९३३) जह नाम वस्रकृवो निस्नं भिणिभिणभणंतकायकली। किमिएहिं सुलुसुलायइ सोएहि य पूइयं वहइ।।

षृ. 'जह' यथेति ६ष्टान्तोपदर्शने नामेति कोमलामन्त्रणे सम्भावने वा 'वद्यकूवो'ति वर्चस्ककूपो विष्ठाभृतकूपो भवति, किंभूतः ? — 'भिणिभिणी'ति शब्दं 'भणंत'ति भणतां — भृशं कथयतां काकानां कलि — वायसानां सङ्गामो यत्र स भिणिभिणिभणत्काककिल, कृमिकैः — विष्ठानीलंगुभि सुलुसुलेत्येवंशब्दं करोतीतिसुलुसुलायते, स्रतोभिश्च — रेल्लकैः पूतिकं — परमदुर्गन्धं वहित — स्रवतीत्यर्थः विष्ठाकूपः, तथेदमपि शरीरं ज्ञातव्यं मृतावस्थायां रोगाद्यवस्थायां वेति ।।

अथ शरीरस्य शवावस्थां दर्शयति गाथात्रयेण-

मू. (९३४) उद्धियनयणं खगमुहविकट्टियं विप्पइन्नबाहुलयं। अंतविकट्टियमालं सीसघडीपागडीघोरं।।

षृ. 'उद्धिं' उद्धृते-निष्कासिते काकादिभिर्नयने-लोचने यस्य यस्मिन् यस्माद्वा तदुदधृतनयनं, खगमुखैः-विहगतुण्डैः 'विकिट्टयं'ति विकिर्त्तितं-विशेषेण स्थाने स्थाने पाटितं खगमुखविकिर्त्तितं, विप्रकीर्णी-अवकीर्णी विरलावित्यर्थः 'बाहुलयं'ति बाहू-प्रवेष्टी यस्य शवस्य तद्विप्रकीर्णबाहु 'अंतविकिट्टयमालं'ति विकिर्षितान्त्रमालं श्रृ गालादिभिरिति 'सीसघडीपागडी'ति श्रुकटया शीर्षघटिकया-तुम्बिलकया घोरं-रौद्रं ॥

पू. (९३५) भिणिभिणिभणंतसद्दं विसप्पियं सुलुसुलिंतमंसोडं ।

मिसिमिसिमिसंतकिमियं थिविथिविथिविअंतबीभच्छं।।

वृ. 'भिणि०' 'भिणिभिणिभणंत'ति धातूनामनेकार्थत्वादुत्पद्यमानः शब्दो यत्र तत् भिणिभिणभणच्छन्दं मक्षिकादिभिर्गणगणायमानमित्यर्थः—, विसर्पद—अङ्गादिशिथिलत्वेन विस्तारं व्रजत् 'सुलुसुलिंतमंसोडं'ति सुलुसुलायमानमांसपुटं 'मिसिमिसिमिसंतिकिमियं'ति मिसिमिसिति— मिसन्तः शब्दं कुर्वन्तः कृमयो यत्र तत् मिसिमिसिमिसत्कृमिकं 'थिविथिविथविअंतबीभच्छं'ति छबछबायमानैरन्त्रैर्बीभत्तं—रौद्रमित्यर्थः ॥

मू. (९३६) पागडियपंसुलीं विगरालं सुकक्कसंधिसंघायं । पडियं निद्येयणयं सरीरमेयारिसं जाण ।।

षृ. 'पग०' प्रकटिताः -प्रकटत्वं प्राप्ताः पांशुलिका यत्र तद्यकटितपांशुलिकं, विकरालं-मयोत्पादकं, शुष्काश्चताः सन्धयश्च शुष्कसन्धयस्तासां सङ्घातः -समुदायो यत्र तच्छुष्कसन्धिसङ्घातं, विकरालं -भयोत्पादकं, शुष्काश्चताः सन्धयश्च शुष्कसन्धयस्तासां सङ्घातः -समुदायो यत्र तच्छुष्क सन्धिसङ्घातं, पतितं गत्तादी निश्चेतनकं -चैतन्यविवर्जितं शरीरं -वपुः एताद्दशं-पर्वोक्तधर्मयुक्तं त्वं 'जाण'त्ति जानीहि, 'जाणे'इति पाठे तु निश्चेतनकं शरीरमहमीदशं जानामीति ॥

मू. (९३७) वद्याउ असुइतरं नवहिं सोएहिं परिगलंतेहिं। आमगमञ्जगरूवे निव्वेयं सरीरमेयारिसं।।

षृ. 'वद्याउ०' नवभिः स्रोतोभिः परिगलदिभ वर्चस्कात्–गूथात् अशुचितरं–अपवित्रतमं 'आमगमञ्जगरूवे'त्ति अपक्वशरावतुल्ये शरीरे निर्वेदं–वैराग्यं व्रजत, विष्णुश्रीशरीरे विक्रमक्शोराजस्येव ॥

मू. (९३८) दो हत्था दो पाया सीसं उद्यंपियं कवंधंमि । कलमलकोट्टागारं परिवहसि दुयादुयं वद्यं ॥

षृ. 'दो हत्या०' द्वे हस्ते द्वे पादे 'सीसं उद्घंपियं'ति शीर्षमुत्-प्राबल्येन चिप्पतं का तच्छीर्षोद्यम्पितं तस्मिन्, यद्वा-शीर्षेणोत्-प्राबल्येन चिप्पतं-आक्रमितं यत्तत् तथा तस्मिन् प्राकृतत्वादनुस्वारः, कलमलकोष्ठागारे एवंविधे कबन्धे 'दुयादुयं'ति शीघ्रं शीघ्रं कि वर्चस्र परिवहसि त्वमिति, अत्र यथायोगं विभक्तिपरिणामो झेय इति ॥

मू. (९३९) तं च किर रूववंतं वद्यंतं रायमग्गमोइण्मं । परगंधेहिं सुगंधय मत्रंतो अप्पणो गंधं ।।

षृ. 'तं च िक ' च पुनस्तच्छरीरं 'िकर'त्ति सम्भवनायां रूपवत् व्रजत् राजमार्गं 'ओइइं'ित प्राप्तं, तत्रपरगन्धः – पाटलचम्पकादिभि सुगन्धकं जातं, तत्र च त्वमात्मनो गन्धं 'मन्नंतो'ित जानन् हर्षयसीति ॥

मू. (९४०) पाडलचंपयमल्लियअगरुथचन्दणतुरुद्धवामीसं । गंधं समोयरंतं मन्नतो अप्पणो गंधं ।।

वृ. परगन्धं दर्शयति – 'पाङ्' पाटलचम्पकमञ्जिकाऽगुरुकचन्दनतुरुष्कमिश्रं वा — अथव मिश्रं – संयोगोत्पन्नं यक्षकर्दमादिकं गंधं कस्तूर्यादिकं किं भूतं? – 'समोयरंतं'ति सर्वतो विस्तात्। एवंविधं परगन्धमात्मनो गन्धमिति 'मन्नंतो'त्ति जानन् हर्षयसीति ॥ मू. (१४१) सुहवाससुरहिगंधं वायसुहं अगरुगंधियं अंगं। केसा ण्हाणसुगंधा कयरो ते अप्पणो गंधो।।

षृ. 'सुहवा०' शुभवासै: -सुन्दरचूर्णै सुरिभगन्धो -सुष्ठुगन्धो यत्र तत् शुभवाससुरिभगन्धं वातैः शीतलादिभि सुखं शुभं वा यत्र तत् वातसुखं, अगुरुगन्धो धूपनादिप्रकारेण जातोऽस्येति अगुरुगन्धि, तत् एवंविधं अङ्गं-गात्रं वर्तते 'केसा ण्हाणसुगंध'ति ये च केशाः -कचास्ते स्नानेन-सवनेन सुगन्धा वर्तन्ते, अथ कथय त्वं कतरः -कतमस्ते -तव आत्मनो गन्ध इति ॥

पू. (१४२) अच्छिमलो कन्नमलो खेलो सिंघाणओ य पूओ अ। असुईमुत्तपुरीसो एसो ते अप्पणो गंधो।।

वृ. आत्मगन्धं दर्शयति यथा-'अच्छिठ' अक्षिमलो-दूषिकादि कर्णमलः श्लेष्मा-कण्ठमुखश्लेष्मा 'सिंघाण्उ'ति नासिकाश्लेष्मा चशब्दादन्योऽपि जिह्नामलगुह्ममलकक्षामलादि, किभूतः ? -'पूईओ य'ति पूतिको-दुर्गन्धस्तथाऽशुचि-सर्वप्रकारैरशुभं मूत्रपुरीषं-प्रस्नवगूथं एषः-अनन्तरोक्तस्ते-तवात्मनो गन्धः ॥ अथ वैराग्योत्पादनार्थं स्त्रीचरित्रं दर्शयति, यथा-

मू. (१४३) जाओ चिय इमाओ इत्थियाओ अनेगेहिं कइ वरसहस्सेहिं विविहपासपिडबद्धेहिं कामरागमोहेहिं वित्रयाओ ताओऽवि एरिसाओ, तंजहा—

पगइविसमाओ १ पियवयणवल्लरीओ २ कइयवपेमगिरितडीओ ३ अवराहसहस्स-धरणीओ ४ पभवो सोगस्स ५ विनासो बलस्स ६ सूणा पुरिसाणं ७ नासो लज्जाए ८ संकरो अविनयस्स ९ निलयो नियडीणं १० खणी वइरस्स ११ सरीर सोगस्स १२ भेओ मज्जायाणं १३ आसाओ रागस्स १४ निलओ दुद्धरियाणं १५ माईए संमोहो १६ खलणा नाणस्स १७ चलणं सीलस्स १८ विग्घो धम्मस्स १९ अरी साहूणं २० दूसणं आयारपत्ताणं २१ आरामो कम्मरयस्स २२ फलिहो मुखमगस्स २३।

— भवणं दरिद्दस्स २४ अवियाओ इमाओ आसीविसोविव कुवियाओ २५ मत्त गओ विव मयणपरवसाओ २६ वर्ष्घीविव दुइहिययाओ २७ तणच्छन्नकूवोविव अप्पगासहिययाओ २८ मायाकारओ विव उवयारसयबंधणपउत्तीओ २९ आयरियसविधिपव बहुगिज्झसब्भावाओ ३० फुंफुयाविव अंतोदहणसीलाओ ३१ नरगयमग्गोविव अणविद्वयित्ताओ ३२ अंतो दुइवणो विव कुहियिहययाओ ३३ किण्हसप्पोविव अविस्ससिणिज्ञाओ ३४ संघारोविव छन्नमायाओ ३५ संज्झब्भरागोविव मुहुत्तरागाओ ३६ समुद्दवीचिविव चलस्सभावाओ ३७ मच्छोविव दुप्परियत्तणसीलाओ ३८ वानरोविव चलचित्ताओ ३९ मद्यूविव निव्चिसेसाओ ४० कालोविव निरणुकंपाओ ४९ वरुणो विव पासहत्थाओ ४२ सिल्लिमव निन्नगामिणीओ ४३ किवणोविव उत्ताणहत्थाओ ४४ नरओविव उत्तासिणज्ञाओ ४५ खरोविव दुस्सीलाओ ४६।

— दुष्टस्सोविव दुद्दमाओ ४७ बालो इव मुहुत्तहिययाओ ४८ अंधयारिमेव दुप्पवेसाओ ४९ विसवल्लीविव अणल्लियणिज्ञाओ ५० दुङ्घगाहा इव वापी अणवगाहाओ ५१ ठाणभङ्गोविव इस्सरो अप्पसंसणिज्ञाओ ५२ किंपागफलिमव मुहमहुराओ ५३ रित्तमुङ्घीविव बाललोभणिज्ञाओ ५४ मंसपेसीगहणिमेव सोवद्दवाओ ५५ जलियचुडिलीविव अमुद्यमाणदहणसीलाओ ५६ अरिङ्गिय दुक्लंघणिज्ञाओ ५७ कूडकरिसावणो विव कालविसंवायणसीलाओ ५८ चंडसीलोविव दुक्खरिक्खियाओ ५९ अइविसाओ ६० दुर्गुछियाओ ६१ दुरुवचाराओ ६२ अगंभीराओ ६३ अविस्ससणिञ्जाओ ६४ अणवत्थियाओ ६५ दुक्खरिक्खियाओ ६६ दुक्खपालियाओ ६७ अरइकराओ ६८ कक्कसाओ ६९।

— दढवेराओ ७० रूवसोहग्गमओमत्ताओ ७१ भुयगगइकुडिलहिययाओ ७२ कंतार-गइड्राणभूयाओ ७३ कुलसयणित्तभेयणकारिकाओ ७४ परदोसपरगासियाओ ७५ कयग्धाओ ७६ बलसोहियाओ ७७ एगंतहरणकोलाओ ७९ चंचलाओ ७९ जोइभंडोवरागो विव मुहरागविरा-गाओ ८० अवियाइं ताओ अंतरंगभंगसयं ८१ अरञ्जुओ पासो ८२ अदारुया अडवी ८३ अणलस्स निलओ ८४ अइक्खा वेयरणी ८५ अणामिया वाही ८६ अविओगो विप्पलाओ ८७ अरु उवसगो ८८ रइवंतो चित्तविब्भमो ८९ सव्वंगओ दाहो ९० अणब्भया वज्ञासणी ९१ असलिलप्पवाहो ९२ समृद्वरओ ९३ ।

षृ. 'जाओ चिय इमाओ'इत आरम्य 'असिव्य छिज्जिउं जे'इति पर्यन्तं गद्यं, या एर इमाः—वक्ष्यमाणाः स्त्रियः अनेकैः कविवरसहस्रैः विविधपाशप्रतिबद्धैः कामरागमोहैः—मन्मथ-रागमूढैः 'वित्रयाउ'ति वर्णिताः श्रृ ङ्गारादिवर्णनप्रकारेणेति 'ताओवि'ति ता अपि ईध्श्यः— वक्ष्यमाणस्वरूपा ज्ञातव्याः, तद्यथा—'पगद्भविसमाओ'ति प्रकृत्या—स्वावेन विषमा—वक्रभाव-युक्ताः, आवश्यकोक्तपतिमारिकादिवत् १ ।

'पिय०' प्रियवचनवर्क्षयं-मिष्टवाणीमञ्जर्य ज्ञातोक्तजिनपालितजिनरक्षितोप-सर्गकारिणीरलद्वीपदेवीवत् २ 'कइ०' कैतवप्रेमगिरिनद्यः, कुशिष्यकूलवालुकपातिकामाम-धिकागणिकावत् ३ 'अवरा०' अपराधसहस्रगृहरूपाः, ब्रह्मदत्तमातृचुलनीवत् ४ 'पभवो०' अयं स्त्ररूपो वस्तुस्वभावः प्रभवः-उत्पत्तिस्थानं, कस्य ?-शोकस्य, सीतागमने रामस्येव ५ 'विणा०' विनाशो बलस्य-पुरुषबलस्य, क्षयहेतुत्वाद्, उक्तश्च-

॥ ९ ॥ - "दर्शने हरते चित्तं, स्पर्शने हरते बलम् । सङ्गमे हरते वीर्यं, नारी प्रत्यक्षराक्षसी ॥"

यद्वा-विनाशः-क्षयः, कस्य? - बलस्य-सैन्यस्य कूणिकस्त्रीपद्मावतीवत् ६ 'सूणा०' पुरुषाणां शुना-वधस्थानं सूरीकान्ताराज्ञीवत् ७ नाशो लजायाः, लजारिहतत्वात्, लक्ष्मणप्रार्थन्कारिकासूर्पणखावत्, यद्वा लजानाशः अस्याः सङ्गेपुरुषस्य लजानाशो भवति, गोविन्दद्विजपुत्रवत्, यद्वा नाशः-क्षयः 'लजाए'ति लजायाः-संयमस्याषाढभूतियतिचारित्ररत्नलुण्टिकानटपुत्रिकावत् ८ 'संक०' निलयो-गृहं, कासां ? - निकृतीनां-आन्तरदम्भानामित्यर्थः, चण्डप्रद्योतप्रेषिताभय-कुमारविञ्चकावेश्यावत् १०।

'खणीo'ति खनि—आकरः, कस्य ? -वैरस्य, जमदग्रितापसस्त्रीरेणुकावत् ११ शरीरं शोकस्य वीरककान्दिवकस्त्रवनमालावत् १२ भेदो-नाशः मर्यादायाः कुललपायाः श्रीपित-श्रेष्ठिपुत्रीवत् यद्वा मर्यादायाः संयमलक्षणायाः विनाशः, आईकुमारसंयमस्य आईकुमार-पूर्वभवस्त्रीवत् १३ 'आसाउ०'ति आशा-वाञ्छा रागस्य-कामरागस्य तद्धेतुकत्वात्, यद्वा आश्रयः -स्थानं रागस्य, उपलक्षणत्वात् द्वेषस्यापि, आर्षत्वादाकारः, यद्वा आ-ईषदिष अइति निस्वादः आअस्वादः, कस्य ? -रागस्येति-धर्मरागस्य १४ 'निल०' निलयो-गेहं, केषां?

-दुश्चरित्राणां भूयङ्गमचौरभगिनीवीरमतीवत् १५।

— 'माईo' मातृकायाः समूहः कमलश्रेष्ठिसुतापदिमनीवत् १६ 'खo' स्खलना—खण्डना ब्रानस्य—श्रुतज्ञानादेः, उपलक्षणाद्यारित्रादेः, रण्डाकुरण्डामुण्डिकादिबहुप्रसङ्गे तदभावत्वादर्हन्न-कश्रुष्ठकवत् १७ 'चलo' चलनं शीलस्य—ब्रह्मव्रतस्य, ब्रह्मचारिणां तस्याः सङ्गेतन्न तिष्ठतीतिभावः १८ 'विग्घोo'ति विघ्नः—अन्तरायः धर्मस्य—श्रुतचारित्रादेः १९ 'अरिo' अरि-निर्दयो रिपुः, केषां?—साधूनां—मोक्षपथसाधकानां, चारित्रप्राणविनाशहेतुत्वात् महानरककारागृहप्रक्षेपकत्वाद्य कूलवालुकस्य मागिधकावेश्यावत् २० ।

'दूषo' दूषणं—कलङ्कः, केषां ?—'आयाo' ब्रह्मव्रताद्याचारोपपन्नानां २१ आरामः— कृत्रिमवनं, कस्य ?—कर्मरजसः—कर्मपरागस्य, यद्वाकर्म च—निबिडमोहनीयादि रश्च—कामः चश्च—चौरः कर्मरचं तस्यारामो—वाटिका २२ 'फलिहो'ति अर्गला यद्वा झंपकः मोक्षमार्गस्य —शिवपथस्य २३ भवनं—गृहं दारिद्यस्य कृतपुण्यकाश्चितवेश्यावत् २४ 'अवि याओ इमाओ'ति अपि च इमा—वक्ष्यमाणाः स्त्रयः एवंविधाः भवन्ति, 'आसीविसो विव कुo' वियशब्दो इवार्ये, 3 आशीविषवत्—हंष्ट्राविषभुजङ्गमवत् कृपिताः—कोपं गताः भवन्ति २५ ।

मत्तगज-उन्मत्तमतंगज इव मदनपरवशा मन्मयविह्नला भवन्ति, अभयाराज्ञावत् २६ 'वची०' व्याघ्रीवत् दुष्टहदयाः-दुष्टचित्ताः, पालगोपालापरमातामहालक्ष्मीवत् २७ 'तण०' तृणछत्रकूप इव-तृणसमूहाच्छादितान्धुवत् अप्रकाशहृदयाः, शतकश्रावकभायरिवतीवत् २८ 'पाया' मायाकारक इव-परवश्रकमृगादिबन्धक इवोपचारशतेन बन्धनशतप्रयोक्रयः, तत्रोपचारशतानि—औपचारिकवचनचेष्टादिशतानि बन्धनानि रञ्जुरनेहादिबन्धनशतानीव तेषां 'पउत्तीउ'त्तिकर्त्रयः २८ 'आयरि०' अधापि विवशब्द इवार्थे, आचार्यसविधमिव—अनुयोग-कुसमीपमिव बहुभि—अनेकप्रकाररनेकपुरुषवांग्राह्यः-प्रहीतुंशक्यः यहाऽऽर्षत्वात् 'अगिज्ञु'ति अग्राह्यः सर्वथा ग्रहीतुमशक्यः सर्भावः—आन्तरित्ताभिप्रायो यासां ताः बहुग्राह्यसद्भावाः बहुअग्राह्यसद्भावा व २९ 'पुं फुं०'फुंफुकः—करीषाग्नि कोउ इतिजनोक्तिस्तद्वत् अन्तो दहनशीलाः पुरुषाणामन्तो दुःखाग्निज्वालनात्, उक्तश्च्न

॥ ९ ॥ 🔭 "पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कऱ्या, शठं च मित्रं चपलं कलत्रम् ।

🕆 विलासकालेऽपि दरिद्रता च, विनाऽग्निना पश्च दहन्ति देहम् ॥''

३० 'नग्ग०' विषमपर्वतमार्गवत् अनवस्थितिचत्ताः नैकत्रस्थआपितान्तः करणा इत्यर्थः, अनङ्गसेनसुवर्णकारजीवस्त्रीवत्, यद्वा नग्नकमार्गवत्—जिनकल्पिपन्थ वत् नैकत्रचित्ताः यद्वा नग्नकमार्गवत्—भूतावेष्टिताचारवत् नैकत्रचित्ताः ३९ 'अंतोदु०' अन्तर्दुष्टव्रणवत् कुथितहृदयाः, जिलभटोन्मत्तरामावत् ३२ 'किण्ह०' कृष्णसर्पवत् 'अवि०' विश्वासं कर्तुमयोग्या इत्यर्थः ३३ 'संघा०' संहारवत्—बहुजन्तुक्षयवत् 'छन्नमाया०' प्रच्छन्नमातृकाः ३४ 'संझ०' सन्ध्याभ्ररागवत् मृहूर्तरागाः तथाविधदुष्टवेश्यावत् ३५ ।

'समुद्दo' समुद्रवीचिवत्—सागरतरङ्गवत् चलस्वभावाः—चञ्चलस्वाभिप्रायाः ३६ 'मच्छो०' गत्यवत् दुष्परिवर्त्तनशीलाः महता कष्टेन परिवर्त्तनं—पश्चाद् वालयितुं शीलं—स्वभावो यासां तास्तथा ३७ 'वान०' वानरवत् चलवित्ताः—चञ्चलाभि प्रायाः ३८ 'मद्युवि०' मृत्युवत्—मरणवत् निर्विशेषाः-विशेषवर्जिताः ३९ 'कालो'ति दुर्भिक्षकालः एकान्तदुष्यमाकालो वा यद्वा लोकोक्तौ दुष्टसर्पः तद्वन्निरनुकम्पाः-दयांशवर्जिताः, कीर्त्तिधरराजभार्यासुकोसलजननीवत् ४० ।

'वरुठ' वरुणवत् पाशहस्ताः पुरुषाणामालिङ्गनादिभिकामपाशबन्धनहेतुहस्तत्वात् ४९ 'सिललठ' सिललिव—जलिव प्रायो नीचगामिन्यः स्वकान्तनृपनदीप्रक्षेपिकाधमपङ्गुका-मुकीराज्ञीवत् ४२ 'किवठ' कृपणवत् उत्तानहस्ताः सर्वेभ्यो मातापितृबन्धुकुटुन्बादिभ्यो विवाहा-दावादानहेतुत्वात् ४३ 'नरउठ' नरकवत् उत्रासनीयाः, दुष्टकर्मकारित्वात् महाभयङ्कराः लक्षणा-साध्वीजीववेश्यादासीघातिकाकुलपुत्रभार्यावत् ४४ 'खरोठ' खरवत्-विष्ठाभक्षकगर्दभवत् दुःशीलाः-दुष्टाचाराः, निर्लज्ञत्वेन यत्र तत्र ग्रामनगरारण्यमार्गक्षेत्रगृहोपाश्रयचैत्यगृहगर्त्तावाटिकादौ पुरुषाणां वाञ्छाकारित्वात्, तथाविधवेश्यादुष्टदासीरण्डिकामुण्डिकादीनामिव ४५।

'दुष्टस्सोo' दुष्टाश्ववत् – कुलक्षणघोटकवत् दुर्दमाः सर्वप्रकारैर्निर्लज्ञीकृताः, अपि – पुनः पुरुषसंयोगे स्वकामाभिप्रायकर्षणहेतुत्वात् ४६ 'बालो' बालवत् – शिशुवत् मुहूर्तहृदयाः, मुहूर्तनत्तं प्रायोऽन्यत्र रागधारकत्वात्, कपिलब्राह्मणासक्तदासीवत् ४७ 'अधकाo' कृष्णभूतेष्टादिभव-मन्धकारं अरुणवरसमुद्रोद्भवतमस्कायं वा तद्धद् दुष्प्रवेशा मायामहान्धकारगहनत्वेन देवानामपि दुष्प्रवेशत्वात् ४८ 'विसo' विषवल्लीवत् – हालाहलविषलतावत् 'अणo' अनाश्रयणीयाः – सर्वधा सङ्गादिकर्त्तुमयोग्याः, तत्कालप्राणप्रयाणहेतुत्वात्, पर्वतकराज्ञो नंदपुत्रीविषकन्यावत् ४९ 'दुइ०' दुष्टग्राहा – निर्दयमहामकरादिजन्तुसवितवापीवत् अनवगाह्याः – महता कष्टेनापि अप्रवेशयोग्याः सुदर्शनश्रेष्ठिवत् ५० ।

'ठाण०' स्थानभ्रष्टः ईश्वरो—ग्रामनगरादिनायकस्तद्वत् यद्वा स्थानं—चारित्रगुरुकुलवा-सादिकंतस्मात्भ्रष्टः ईश्वरः—चारित्रनायकः साधुरित्यर्थः तद्वत्, यद्वा स्थानं—सिद्धान्तव्याख्यानस्यं तस्मात्भ्रष्टः, उत्सूत्रप्रस्पणेन, ईश्वरो—गणनायक आचार्यइत्यर्थः तद्वत्, यद्वा स्थानभ्रष्टो—दुष्टाचारे रक्त इत्यर्थः, ईश्वरः—सत्यकीविद्याधरस्तद्वत्, अप्रशंसनीयाः—साधुजनैः प्रशंसां कर्त्तु योग्या नेत्यर्थः ५१ 'किंपाग०' किंपाकफलिव—विष्वृक्षफलिव मुखे—आदौ मधुराः महाकामरसोत्पादकाः परं पश्चाद्विपाकदारुणाः ब्रह्मदत्तचिक्रवत् ५२ 'रित्तमुट्टी०' रिक्तमुष्टिवत्—पोल्लकमुष्टिवत् बाललोभनीयाः—अव्यक्तजनभोलनयोग्याः वल्कलचीरितापसक्त ५३ 'मंस०' मांसपेसीग्रहणिनव सोपद्रवाः, यथा केनापि सामान्यपक्षिणा कुतश्चित्रस्थानात् मांसपेसी प्राप्ता तस्यान्यदुष्टपक्षिकृताः अनेके शरीरपीडाकारिण उपद्रवा भवन्ति तथा रामाग्रहणेऽनेके इहभवे परभवे च दारुणा उपद्रवा जायन्ते, यद्वा यथा मत्त्यानां मांसपेसीग्रहणं सोपद्रवं तथा नराणामपि स्त्रीग्रहणमित्यर्थः ५४ 'जलि०' अमुश्चन्ती—अत्यज्यमाना 'जलियचुडिलीविव' प्रदीप्ततृणपूलिकेव 'दहनसीला' ज्वालनस्वभावा ५५।

'अरिं' अरिष्ठमिव निविडपापमिव दुर्लङ्कनीयाः ५६ 'कूडं' कूटकार्षापण इव असत्य-नाणकविशेष इव कालविसंवादनशीलाः—कालविघटनस्वभावाः अकालचारिण्य इत्यर्थः ५७ 'चंडं' चण्डशील इव—तीव्रकोपीव दुःखरिक्षताः ५८।

'अतिविसाउ'ति अतिविषादाः दारुणविषादहेतुत्वात्, यद्वा 'अती'ति अतिक्रान्तो गतोऽकार्यकरणे विषादः-खेदो यासां तास्तथा, यद्वा अतीति-भृशं विषं अतिविषं अतिविषं

सा-समन्तात् ददित पुरुषाणां सूरीकान्तावत् यास्ताः अतिविषादाः, यद्वा अतीति भृशं 'वी'ति नानाविधः स्वादो-विषयलाम्पट्यं यासां ता अतिविष्ववादाः, अथवा अतिविषयात् प्रबलपञ्चेन्द्रियलाम्पट्यात् षष्ठीं नरकभूमिं यावत् सुसढमातृवत् गच्छन्ति यास्ता अतिविषयगाः, प्राकृतत्वाद्यकारलोपे सन्धिष्ठ, यद्वा स्वेन्द्रियविषयाप्राप्तौ अतिविषादः—तीव्रखेदो यासां ताः अतिविषादाः, यद्वा अतिकोपात् अतिविषां तीव्रविषमदन्ति—भक्षयन्तीति अतिविषादा इति, यद्वा अतिकृषं वेषां ते अतिवृषा—मनुयस्तेषामा—समन्तात् वसत्यन्तो बिहश्च 'कायंते' यमायंते यम इवचरंति चारित्रप्राणकर्षणत्वेन यास्ता अतिवृषाकाः, यद्वा—लोकानामतिवृषे—तीव्रपुण्यधने आ—भृशं चायंति—चौर इवाचरन्ति यास्ता अतिवृषाचाः ५९।

'दुगुंo' जुगुप्सनीया जुगुप्सां कर्त्त् योग्याः मुनीनां ६० 'दुरुo' दुरुपचाराः— दुष्टोपचाराः—दुष्टोपचारान्वितवचनादिविस्तारोयासांतास्तया ६१ अगंभीराः—गांभीर्यादिगुणरिहताः ६२ 'अविo' अविश्वसनीयाविश्रम्भं कर्त्त् योग्या न ६३ 'अणo' अनवस्थिता, नैकस्मिन् पुरुषे तिष्ठन्तीत्यर्थः ६४ दुःखरिक्षताः—कष्टेन रक्षणयोग्या यौवनावस्थायाम् ६५ दुःखपिलता—दुःखेन पालियतुं शक्याः बालावस्थायाम् ६६ अरितकराः—उद्देगजनकाः ६७ कर्कशाः—इह परत्र च कर्कशदुःखोत्पादकत्वात् ६८ ६ढवैराः—इह परत्र च दारुणवैरकारणत्वात् ६९ रूपसीभाग्य-मदोन्मताः, तत्र रूपं—चार्वाकृति सौभाग्यं—स्वकीर्तिम्रवणादिरूपं मदो—मन्मथजगर्वः ७० ।

'भु०' भुजगगतिवत् कुटिलहृदयाः ७९ 'कंता०' कान्तारगतिस्थानभूताः—कान्तारे— दुष्टश्वापदाकुले महारण्ये गतिश्च-एकािकत्वेन गमनं स्थानं च-एकािकत्वेन वसनं तयोर्भूताः—तुल्याः, तारुणमहाभयोत्पादकत्वात् ७२ 'कुल०' कुलस्वजनिमत्रभदन-कारिकाः—वंशज्ञातिसुहृद्विनाशजनिकाः ७३ 'पर०' परदोषप्रकाशिकाः—अन्यदोषप्रकटकारिकाः ७४ 'य०' कृतं—वस्त्रभरणपात्रादि प्रदत्तं घ्नन्ति—सर्वथा नाशयन्तीत्येवंशीलाः कृतघ्नाः ७५ 'बलसों०' बलं—पुरुषवीर्यं प्रति सङ्गेऽसङ्गे वा शोधयन्ति—गालयन्तीत्येवंशीलाः बलशोधिकाः, यद्वा बलेन—स्वस्वामध्यलक्षणेन निशादौ जारपुरुषादीनां शोधिकाः—तच्छुद्धिकारिकाः बलशोधिकाः यद्वा बवयो रलयौरैक्यात् वरशोधिकाः स्वेच्छया पाणिग्रहणकारित्वात् धम्मिछ्लस्त्रीवृन्दवत् ७६।

'एकं०' एकान्ते—विजने हरणं नेतव्यपुरुषाणां विषयार्थमेकान्तहरणं यद्वा एकान्ते—दूरग्रामनगरदेशादौ स्वकुटुम्बादिजनरहिते हरणं—तत्र पुरुषाणां विषयार्थं लात्वा गमनिमत्यर्थः, तत्र लोकाः—वनशुकरतुल्याः, यथा शूकरः कमि सारं कन्दादिकं भक्ष्यं प्राप्य विजने गत्वा भक्षयित तथेमाः ७७ चश्चलाः—चपलाः ७८ 'जोइमंडोवरागो विव मुहरागिवरागाओ'ति ज्योतिर्भाण्डो परागवत्—अग्निभाजनसमीपरागवत् मुखरागिवरागाः यथाऽग्निभाजनसमीपं मुखं रागवत् भवति अन्ते विरागं तथेमाः यद्वा 'जोइभंडो विव रागाओति०' पाठे तु ज्योतिर्भाण्डस्येवोपरागाः, यथा ज्योतिर्भाण्डं—अग्निभाजनं उप—समीपे रागवत् भवति तथेमा वस्त्रादिभिरुप—समीपे रागवत्यो भवन्तीत्यर्थः ७९ 'अवि याइंति०' अपिचेत्यभ्युद्यये 'आइं'ति वाक्यालङ्कारे 'ताओ' ताः स्त्रयः 'अंतरं' अन्तरङ्गभङ्गशतं—अभ्यन्तरविधटनशतमस्याः

पक्षपाते पुरुषस्य परस्परं मैत्र्यादिविनाशहेतुत्वात्, यद्वा अन्तः-मध्ये 'रंग०'ति पुरुषाणां ब्रह्मद्रत-चारित्रादिरागस्तस्य भङ्गशतं तस्य विघ्नहेतुत्वात् ८० ।

अरजुकः पाशः रज्जुकं विनाबन्धनिमत्यर्थः ८९ 'अदारुय'त्ति अदारुका-काष्टादिरिहता अटवी-कान्तारं, यथा अदारुकाऽटवी मृगतृष्णाहेतुर्भवित तथेमाः यद्वा काष्टादिरिहताऽटवी कदापि न ज्वलित तथेमाः पापं कृत्वा न ज्वलिन्ते, न पश्चात्तापं कुर्वन्तीत्यर्थः –, वृषभकलङ्कदात्री-श्रावकभार्यावत् ८२ 'अणालo' न आलस्यं—अनुत्साहोऽनालस्यं तस्य निलयः, आकार्यादौ सादरं प्रवृत्तिहेतुत्वात् ८३ 'अइक्खo' ईक्ष दर्शनाङ्कनयो'रितिवचनात् अनीक्ष्यवैतरणी-अद्दश्यवैतरणी परमाधार्मिकविकुर्वितनरकनदी तत्सङ्गे तदवाप्तिहेतुत्वात्, अतीक्ष्यवैतरणी व ८४ 'अणाo' अनामिको—नामरहितो व्याधि—असाध्यरोगः इह परत्र च कारणत्वात् ८५।

'अविओo' न विद्यते वियोगः-पुत्रमित्रादिविरहो यत्र सः अवियोगः एवंविधो विप्रलापः-परिदेवनं ८६ 'अरुo' अरुक्-रोगरहितः उपसर्ग, यद्वाऽर्षत्वाद् वकारलोपे अरूपो- रूपरहितः उपसर्गः-उपपातः ८७ 'रइ' रति-कामप्रिया विद्यते अस्येति रतिमान् कन्दर्पोऽयमिति चित्तभ्रमः चित्तभ्रमकारणत्वात्, यद्वा रतिमान्-सुखदायी मनोभ्रमो-मनोविकारः ८८ 'सव्वंगं' सवाङ्गः-सर्वशरीरव्यापी दाहः ८९ ।

'अणब्भया वज्ञासणी'ति अनभ्रका—अभ्रकरिता वज्ञाशनि—विद्युत्, यद्वा इयं-स्त्री 'असणी'ति अशनि—विद्युत्, किंभूता?—अनभ्रकाःआकाशरिता मेघरिता वा, पुनः किंभूता वज्रा—वज्रतुल्येत्यर्थः, दारुणविपाकहेतुत्वात्, 'अपसूया वज्ञासणी'ति पाठे अप्रसूता—अपत्यज्ञनरिता वज्जेति वर्या—सुन्दराकारा एवंविधा रामा असणीति—अशनि—विद्युत्, बालानां नरकावै दारुणदहनहेतुत्वात् 'अप्पसूया वज्ञासुणी'ति पाठे तु अप्रसूता—नवयौवना परिणीता अपरिणीता वा सालङ्कारा अनलङ्कारा वा मुण्डा अमुण्डा वा एवंविधा रामा 'सुणी'ति हडुक्किलाशुनीवत्—मण्डलीवत् 'वज्रे'ति वर्ज्या सर्वथा साधुभिर्मोक्षकाङिभि ब्रह्मचारिभिश्च—चतुर्थव्रतरक्षाकाङ्किभिः वर्जनीयेत्यर्थः कायवाङ्मनोभिरिति ९०।

'असिलं अजलप्रवाहः 'असिललपलावो'ित पाठान्तरं अजलप्तावः—जलं विना रेल्लिरित्यर्थः ९१ 'समुद्दरउ'ित समुद्रवेगः केनािप धर्तुमशक्यत्वात् 'समद्धरउ'ित पाठेतु सम्पक् अर्धं यस्पात् स समर्थः, एवंविधः 'रउ'ित वेगः परमस्नेहवतां बान्धवानां परस्परं स्त्रीकलहे सित गृहाद्यर्धकरणहेतुत्वात्, भद्रातिभद्राख्यौ श्रेष्ठिपुत्राविव ९२ ।

मू. (१४३) अवि याइं तासिं इत्यियाणं अनेगाणि नामनिरुत्ताणि पुरिसे कामरागपिडबर्ढे नानाविहेहिं जवायसयसहस्सेहिं वहबंधणमाणयंति पुरिसाणं नो अन्नो एरिसो अरी अत्यिति नारीओ, तंजहा—नारीसमा न नराणं अरीओ नारीओ, नानाविहेहिं कम्मेहिं सिप्पियाईहिं पुरिसे मोहंतित्ति महिलाओ, पुरिसे मत्ते करंतित्ति पमयाओ, महंतं किलं जणयंतित्ति महिलियाओ, पुरिसे हावभावमाईहिं रमंतित्ति रामाओ, पुरिसे अंगानुराए करंतित्ति अंगनाओ।

नानाविहेसु जुद्धभंडणसंगामाडवीसु मुहाणींगण्हणसीउण्हदुक्खकिलेसमाईसु पुरिसे कालंतित्ति ललनाओ, पुरिसे जोगनिओएहिं वसे ठावंतित्ति जोसियाओ, पुरिसे नानाविहेहिं भावेहिं वण्णंतित्ति वणियाओ, काई पमत्तभावं काई पणयं सविब्भमं काई ससहं सासिब्व ववहरांति काई सत्तुव्य रोरो इव काई पयएसु पणमंति काई उवणएसु उवणमंति काई कोउयनमंति काई।

- सुकडक्खनिरिक्खिएहिं सविलासमहुरेहिं उवहसिएहिं उवग्गहिएहिं उवसद्देहिं गुरुगदिरसणेहिं भूमिलिहणविलिहणेहिं च आरुहणनत्तणेहिं च बालयउवगूहणेहिं च अंगुलिफोडणथणपीलणकडितडजायणाहिं जे असिब्ब छिज्जिउं जे ।

षृ. 'अवि याइं'ति पूर्ववत् 'तासिं इ०' तासामुक्तवक्ष्यमाणानां स्त्रीणामधमाधमानां वासी-कुरण्डादीनामनेकानि—विविधप्रकाराणि नामनिरुक्तानि—नामपदभञ्जनानि भवंति, 'पुरिसे' इत्यादियावत् 'नारीउ'ति 'नारीओ'ति खण्डयति, कथम्?—ना आ अरी इति, ना इति नानाविधैरुप्यशतसहस्र 'कामरागप्रतिबद्धान् पुरुषान् वधबन्धनं प्रति आ इति—आणयंति—प्रापयन्ति अरीति पुरुषाणां च नान्य ई६शः अरि—शत्रु अस्तीति नार्य, 'तंजह'ति तत्पूर्वोक्तं यथेतिदर्शयति—'नारी०' नारीणां समा न नराणामरयः सन्तीति नार्य १ नानाविधैः कर्मीभः—कृषिवाणिज्यादिभि शिल्पका-दिभिश्च—कुम्भकार १ लोहकार २ तन्तुवाय ३ चित्रकार ४ नापित ५ विज्ञानैः पुरुषान्मोहयन्तीति—मोहं प्रापयन्तीति धातूनामनेकार्थत्वात् विडम्बयंतीत्पर्थः इति महिलाः, यद्वा नानाविधैः कर्मभि—मैथुनसेवादिभिः शल्यादिभिश्च मस्तकादौ कबर्यादिविज्ञानै पुरुषान्—बालनरान् मोहयन्तीति— आत्मसात्कुर्वन्तीति स्वस्वार्थपूरणायेति महिलाः २ ।

'पुरिo' पुरुषान् मत्तान्—उन्मत्तान् मुक्तगुरुजनकजननीबान्धवभगिनीमित्रादिलञ्जादीन् कुर्वन्तीति प्रमदाः ३ महान्तं कर्लि—राटिं जनयन्ति—उत्पादयन्तीति महिलिकाः ४ 'पुरिo' पुरुषान् हावभावादिभि मकारोऽलाक्षणिकः रमयन्ति—क्रीडयन्तीति रामाः, श्री अरिष्ठनेमिना सह गोविंद-नितन्बिनीवत्, तत्र हावाः—कामविकाराः भावाः—भावसूचका अभिप्रायाः आदिशब्दात् विलासा नेत्रविकारादयः ५ 'पुरिo' पुरुषान् किंभूतान् ? —अङ्गे—स्वशरीरे पयोधरनितन्बजधनस्मर-कृपिकादिरूपे अनुरागो येषां ते अनुरागास्तानङ्गानुरागान् कुर्वन्तीत्यङ्गनाः ६ ।

'नानाo' नानाविधेषु युद्धमण्डनसङ्ग्रामाटवीषु मुधार्णग्रहणशीतोष्णदुः खक्तेशादिषु पुरुषान् लालयन्ति—विविधं कदर्थयन्तीति ललनाः, तत्र युद्धं—मुध्यादिना परस्परताडनं, भण्डनं— वाक्कलहः, सङ्गामः—कुन्तादिना महाजनसमक्षकलहः, अटवी—अरण्यं तत्र भ्रामणादिकारापणेन मुधा—निष्फलं ऋणं—उद्धारस्तत्कारापणेन यद्धा मुधा—निष्फलं 'अण'मिति शब्दकरणगा- ल्यादिप्रदानं तेन 'गिण्हणन्ति' कामातुरादिप्रकारेण पुरुषग्रहं तेन शीतेन कोपाटोपात् नाधमासादौ वस्त्रद्दालनगृहबहिकर्षणादिना उष्णेन—स्वकार्यकारापणेनातपादौ भ्रामयन्ति दुःखेनापत्यादि-भरणादिपीडादर्शनेन क्लेशेन—रामाद्विज्यादियोगे सति परस्परकलहोत्पादनेन, आदिशब्दाद-वैरप्यनाचारसेवाद्यनर्थोत्पादनैः पुरुषान् पीडयन्तीति ललनाः ७ 'पुरिठ' पुरुषान् योगाः—बाह्याः स्ववाक्कायोद्भवव्यापाराः हास्यकरणाङ्गविक्षेपादयः नियोगाः—आन्तराः स्वमनसि भवाः कामविकारादयस्तैर्योगनियोगैः वशे—स्ववशे स्थापयन्ति—रक्षयन्तीति योषितः, यद्धा पुरुषान् योगनियोगैः—कार्मणवशीकरणादिप्रकारैः स्ववशेस्थापयन्तीतियोषितः 'पुरिठ' पुरुषान् नानाविधैः भावैः—अभिप्रायविलासादिभिर्वर्णयन्ति कामोद्दीपनगुणान् विस्तारयन्तीति वनिताः ९।

'काई पमत्तभावंo'ति काश्चित् कामिन्यः प्रकर्षेण मत्तभावं-उन्मत्तभावं व्यवहरन्ति-प्रवर्त्तयन्ति पुरुषाणां पातनार्थं 'काईo' काश्चित् प्रकर्षेण जनं नम्रत्वं-प्रणतं कुर्वन्ति, किभूतं सहिवभ्रमेण—सविलासेन वर्तते यत्तत्सविभ्रमं पुरुषाणां पाशबन्धनार्थं 'काईo' 'ससद्दं सासिव्य ववहरंति'त्ति काश्चित् सशब्दं यथा स्यात्त्या व्यवहरन्ति—स्वचेष्टां दर्शयन्तीत्यर्थः, क इव 'सासिव्य' श्वासोच्छ्वासरोगिवत्, पुरुषाणां स्नेहभावोत्पादनार्थः, 'काईo' काश्चित् शत्रुवत् प्रवर्त्तयन्ति मारणार्थं मर्मस्थानग्रहणेन, यद्घा स्वभर्त्रादीनां भयोत्पादनार्थं रिपुवत् प्रवर्त्तयन्ति, 'रोरो इव काठ' काश्चित्कामतृष्णातृषिता रोर इव—रङ्क इव रंकपुरुषाणामिष पादयोः पादान् वा प्रणमन्ति—लगन्तीत्यर्थः, 'काईo' काश्चिदुपनतै—नृत्यप्रकाररुपनमन्ति सकलाङ्गादिदर्शनार्थः, 'काईकोउठ' काश्चित् कौतुकं—वचननयनादिभावं कृत्वाविधाय नमन्ति नराणां हास्याद्युत्पादनार्थः, 'काइ'इति पदमग्रेऽपि योज्यम् ।

'सुकडनिरिक्खिएहिं'तिकाश्चित् सुकटाक्षनिरिक्षितैः—सुष्ठुनेत्रविकारनिरिक्षणैः बालान् पातयन्तीति शेषः, 'सिक्लासमहुरेहिं'ति सिक्लासानि च—विलाससिहतानि मधुराणि च सिक्लासमधुराणि एवंविधानि गीतानि वचनानि चेति शेषस्तैः काश्चित् पुरुषान् मोहयन्तीति, 'उपहिसएहि'न्ति उपहिसतैः काश्चित् हास्यचेष्टाकरणैः कामिनां हास्यमुराादयन्तीति, 'उवग्गहिएहिं'ति उपगृहितानि—पुरुषस्यालिङ्गनलिङ्गग्रहकरग्रहणादीनि तैः काश्चित् नराणां स्वप्रेमभावं दर्यन्तीति, 'उवसद्देहिं'ति उपशब्दानि—सुरतावस्थायां वलवलायमानादीनि प्रच्छन्नसमीपशब्दकरणानि वातैः काश्चित् कामिनां कामरागं प्रकटयन्तीति, 'गुरुगदिसणेहिं'ति गुरुकाणि च प्रौढानि—पयोधरनितम्बादीनि स्थूलोद्धत्वात् सुन्दराणि वा यानि दर्शनानि च—

आकृतयस्तानि गुरुकदर्शनानि तैर्दूरस्था एव काश्चित् कामिनः स्ववशे कुर्वन्तीति १ यद्वा गुं इति गुह्यप्रकाशनेन पुरुषं पातयन्ति, यद्वा गु—इति गुरुं स्वजनकभद्रांदिकमिप विप्रतार्याकार्ये प्रवर्त्तयन्ति, 'रु'इति रुदनकरणेन पुरुषं सस्नेहं कुर्वन्ति २ 'ग०'इति स्विपतुर्गृहगमना-दिप्रस्तावे पुरुषमत्यन्तं रागवन्तं कुर्वन्तीति ३ 'द'इति दर्शनेन रक्तकृष्णादिदन्तदर्शनेन कामिनो मोहयन्तीति ४ 'रि'इति सम्भाषणे रे मां मुश्च रे ! मां मा कदर्ययेत्यादिकथनेन कुरामाः पुरुषं सकामंकुर्वन्तीति आर्षत्वात् 'रि'इति यद्वा अरि इति रितकलहे—अरेमया सह मा कुरूप-हासमित्यादिरितिकलहकरणेन पुरुषं क्रीडयन्तीति आर्षत्वात् अरि इति ५ 'स'इति अन्योक्तश्च इगरगीतादिशब्दकरणेन साधूनपि सकामान् कुर्वन्तीति ६ 'ण'इति सकञ्जलसविकारसजलाभ्यां नेत्राभ्यां पुरुषं सकामं स्ववशं सगद्गदं स्वकार्यकर्त्तारमपराधमोक्तारं कुर्वन्तीति गुरुगदरिसणेहिं

'मूमिलिहणविलिहणेहिं चे'ति भूमिलिखनानि-भूमौ पादादिनाऽक्षरलेखनानि विलिखनानि-विशेषतो रेखास्वस्तिकादिकरणानि तैः स्वगुद्धं पुरुषाणां ज्ञापयन्ति इति भूमि (लेखनवि) लेखनैरिति चकारौ अत्र समुच्चयार्थौ 'आरुहणनर्द्दमेः युरुषादिकमाश्चर्यवन्तं कुर्वन्तीति, चटनानि नर्तनानि-भूमौ नृत्यकरणानि तैः आरुहणनर्त्तनैः पुरुषादिकमाश्चर्यवन्तं कुर्वन्तीति, 'वालयउवगूहणेहिंचे'ति बालकाः-मूर्खाः कामिन इत्यर्थः तेषामुपगूहनानि-प्रच्छन्नरक्षणादीनि तैर्वालकोपगूहनैः कुरण्डाः स्वकामेच्छां पूरयन्तीति, यद्वा वालकाः-केशकलापास्तेषामुपगूह-नानि-रचनास्वच्छवस्त्रच्छादितादीनि तैर्मन्मथग्रस्तानधमादमान् स्ववशे कृत्वा बलिवर्द्दवत् वाहयन्तीति, चशब्दात्किपवत्भ्रामयन्ति, अश्ववारयन्तिश्रेणिकभार्याधनश्रीराज्ञीवत्, स्वार्धाप्राप्तै प्राणत्यागमिप कुर्वन्तीति, 'अंगुलिo' अङ्गुलिस्फोटनानि-कडिक्काकरणानि यद्वा अङ्गुलीनां परस्परं 'ताडनानि' सतनपीडनानि कराभ्यां पयोधरचम्पनानि हस्ताभ्यां कुचमर्दनानि वा कटित-टयातनानि श्रोणिभागपीडनानि कराभ्यां वक्रगत्या वा तैः कामिनां चित्तान्यान्दोलयन्तीति, 'तञ्जणाहिं चे'ति तर्जनानि अङ्गुलिमस्तकतृणादिचालनानि तैर्मन्मथपीडामुत्पादयन्ति कामिनां, चशब्दादुद्भटनेपथ्यकरणैराभरणशब्दोत्पादनैः सविलासगत्या चतुष्पथादौ प्रवर्तनैरित्याद्य-नेकप्रकारैर्नरान् बङ्क्षतुल्यान् कुर्वन्त्यतः संयमार्थिभिः साधुभिरासां सङ्गस्त्याज्यः सर्वथा सर्वदैव इति ।

तथा 'अवियाइं'ति पूर्ववत् 'ताओ पासो व वविसउं जे' इति 'जे'इतिप्राकृतत्वात् लिङ्गव्यत्ययः याः करण्डादयः स्त्रियः सन्ति जगित 'ताउ'ति ताः पुरुषान् पाशवत्—नागपाशवागुरादिबन्धनवत् 'वविसतुं०' धातूनामनेकार्थत्वात् बन्धितुं वर्तन्ते, इह परमवे नराणां बन्धनकारणत्वात्, 'पंकुव्य खुप्पि उं जे'ति 'ताउ'ति अग्रेऽप्यनुवर्तते, याः कुलटादयः सन्ति विश्वे ताः नरान् पङ्मवत्—अगाधार्वबहुलसमुद्रादिकर्दमवत् 'खुप्पिउं०' क्षेष्ठं खूचियतुं वर्तन्ते, 'मझुव्य मिरउं जे'ति याः स्वैरिण्यादयः सन्ति ताः नरान् मृत्युवत्—कृतान्तवत् 'मर्तु' मारणार्थमित्यर्थ मारियतुं प्रवर्त्तन्ते, 'अगणिव्य डहिउं जे'ति या जगिति गणिकादयः सन्ति ताः कामिनः अग्निवत् दग्धं—ज्वालयितुं परिभ्रमन्ति, 'असिव्य छिञ्जिउं जे'ति याः तरुणीपरिव्राजिकादयः सन्ति ताः कौटिल्यकरण्डाः साधूनप्यसिवत्—खङ्गवत् छेनु—द्विधाकर्तुमृत्सहन्ते।

अध स्त्रीवर्णनं पद्येन वर्णयति यथा-

मू. (९४४) असिमसिसारच्छीणं कंतारकवाङचारयसमाणं । घोरनिउरंबकंदरचलंतबीभच्छभावाणं ॥

षृ. 'असिमसिo' नारीणां सर्वथा विश्वासो न विधेयः, किभूतानाम् ? —असिमषीस-६क्षीणां—करवालकजलतुल्यानां, अयमाश्रयः—यथा खङ्गः पण्डितेतरान नरान् निर्दयतया छेदयित तथाऽनार्या नार्योऽपि नरानिह परत्र दारुणदुः खोत्पादनेन छेदयन्ति, यथा च कज्ञलं स्वभावेन कृष्णं अस्य श्वेतपत्रादिसङ्गमे सित तस्य कृष्णत्वं जनयित तथोन्मत्तनारी स्वभावेन कृष्णा दुष्टान्तः-करणत्वात् तत्सङ्गमे उत्तमकुलोत्पन्नानामुत्तमानामपि कृष्णत्वमुत्पादयित यशोधनक्षयराजविटम्ब-नादिहेतुत्वात्, पुनः किंभूतानां ? —कान्तारकपाटचारकसमानां—अरण्यकपाटकारगृहतुल्यानाम्, अयमाशयः—यथा गहनवनं व्याच्चाद्यात्रुलं जीवानां भयोत्पादकं भवति तथा नराणां नार्योऽपि भयं जनयन्ति, धनजीवितादिविनाशहेतुत्वेनेति, यथा प्रतोल्यां कपाटेदते केनापि गन्तुं न शक्यते तथा हृदयप्रतोल्यां नारीरूपे कपाटे दत्ते ति केनापि कुत्रापि धर्मवनाद गन्तुं न शक्यते, यथा च जीवानां कारागृहं दुःखोत्पादकं भवति तथा नराणां नार्योऽपीति । —

पुन किंभूतानां ? — 'घोरनि' घोरो-रौद्रः प्राणनाशहेतुत्वात् निकुरम्बं-घनमगाधिमत्यर्थः यत्कमिति—जलं तस्मादिव दरो-भयं यस्मात् भावात् साङ्केतपुराधिपदेवरितराजस्येव स निकुरम्ब-कन्दरः किमत्यव्ययशब्दः उदकवाचकः, चलन्-पुरुषं पुरुषं प्रति भ्रमन् बीभत्सो-भयङ्करः, इह परत्र महाभयोत्पादकत्वात्, एवंविधो भावः—आन्तरमायावक्रस्वभावो यासां ताः घोरनिकुरम्ब-कन्दरचलदवीभत्सभावास्तासां घोरभावानाम् ।

मू. (९४५) दोससयगागरीणं अजससयविसप्पमाणहिययाणं । कड्डयवपन्नत्तीणं ताणं अत्रायसीलाणं ।। षृ. 'दोससय०' दोषशतगर्गरिकाणां दोषाः—परस्परकलहमत्सरगलिप्रदानमर्गेदघाटन-कलङ्कप्रदानाजल्यजल्पनशापप्रदानस्वपरप्राणघातचिन्तनादयस्तेषां शतिन तेषां गर्गरिकाः—भाजनिवशेषास्तासां दोषशतगर्गरिकाणां, 'अजस०' यशसः शतानि यशःशतानि न यशःशतान्ययशःशतानि तेषु विसर्पत्—विस्तारं गच्छत् हृदयं—मानसं यासां ता अयशःशतविसर्पदहृद्धयास्तासां तथा 'कइयव'ति कैतवानि कपटानि नेपथ्यभाषामार्गगृहपरावर्त्तादीनि 'पन्नती'ति प्रज्ञाप्यन्ते—प्ररूप्यन्ते याभिस्ताः कैतवप्रज्ञसयः, यद्वा कैतवानांदम्मानां प्रकृष्टाः ज्ञसयो—ज्ञानिकमलश्रेष्ठिसुतापिचनीवत् यासु ताः कैतवप्रज्ञसयः, यद्वा कैतवेषु प्रज्ञाया—बुद्धेराप्ति—आदानं यासां ताः कैतवप्रज्ञासयस्तासां कैतवप्रज्ञप्तीनां २ कैतवप्रज्ञातीनां वा, तथा 'ताणं'ति तासां नारीणामज्ञातशीलानां—पण्डितैरप्यज्ञातस्वभावानां, यदुक्तं —

१६ वाण दानवाणं मंत मंतित मंतिनउणा जे।
 इत्थीचरियंमि पुणो ताणिव मंता कहं नहा।।
 शा शा जालंधरेहिं भूमीहरेहिं विविहाहिं अंगरक्खेहिं।
 निवरक्खियावि लोए रमणी दीसइ पमडमजाया।।
 भच्छपयं जलमञ्झे आगासे पंखियाण पयपंती।
 महिलाण हिययमग्गो तिन्निवि लोए न दीसंति।। इति।

यद्वा न ज्ञातं—नाङ्गीकृतं शीलं—ब्रह्मस्वरूपं याभिस्ताः अज्ञातशीलास्तासां, यद्वा नजः कुत्सार्थत्वात् कुत्सितं ज्ञातं शीलं साध्वीनां याभि परिव्राजिकाभिः योगिन्यादिभिस्ता अज्ञातशीलास्तासां मुनिवरैः प्रसङ्गैकान्तजल्पनैकत्रवासविश्वाससहचलनादिव्यापारो वर्जनीय इति।

मू. (९४६) अन्नं रयंति अन्नं रमंति अन्नस्स दिंति उल्लावं । अन्नो कडअंतरिओ अन्नो पडयंतरे ठविओ ।।

वृ. 'अत्रं रयंति ०' द्वित्र्यादिपुरुषसम्भवे ऽन्यं –स्वभावसमीपस्यं नरं रजंति –अर्थवीक्ष-णादिना कामरागवन्तं कुर्वन्तीत्यर्थः –, पक्षीपितलघुभ्रातरं प्रति अगडदत्तस्त्रीमदनमञ्जरीवत्, यद्वा स्वकुशीलत्वे केनापि झाते सित 'अत्रं रयंति'ति अन्यद् –विषभक्षणकाष्ठमक्षणादिकं रचयन्ति कपटेन निष्पादयन्ति यद्वा जारस्य स्वान्तः करणज्ञापनाय 'अत्रं रयन्ति'ति अन्यदास व्यतिरिक्तं –तृणतन्तुदंडादि रदन्ति –उत्पाटनं कुर्वन्तीत्यर्थः, 'रद विलेखने'इति विलेखनमुत्पाटनमिति, 'अत्रं रमंति'ति अन्यं –स्वकान्तव्यतिरिक्तं नरं रमन्ति –मैथुनतत्पराः क्रीडन्तीत्यर्थः, पातालसुन्दरीवत्।

यद्वा 'अत्रं रयंति'ति अन्यं—स्वकान्तव्यतिरिक्तं पुत्रभातृकान्तिमत्रादिकं प्रति रामा-अधमकामाः रियगतौ रबु गतौ च रयते रम्बन्ति वा गच्छन्ति तथा द्यूतादिप्रकारेण क्रीडयन्ति वा 'अन्नस्स दिंति उल्लावंति अन्यस्य—उक्तव्यतिरिक्तस्य ददित—प्रयच्छन्ति 'उल्लावं'ति वचनं—बोलरूपं यद्वा अनेक नरपरिवृता अप्यन्यस्य नरस्य मार्गादि मच्छतः स्थितस्य वोत्—प्राबल्येनोल्लापं— मन्मथोद्दीपनशब्दं ददतीति, 'उल्लायं'ति पाठे तु कामिनरिद्वित्र्यादिसम्भवे सित उन्मत्ताः कुरामाः अन्यस्य ददिति उल्लातं—प्रवलपादप्रहारमित्यर्थः, तथा अन्यः कश्चिद् बलिवर्द्दरूपः कटान्तरितः— कटान्तर्वर्त्ती प्रच्छन्नरिक्षतो भवतीति, तथा अन्यस्तत्कटाक्षवाणसमूहेन ग्लानीकृतः पटकान्तरे— वस्त्रविशेषान्तरे स्थपितो भवेत् ग्लानवदिति ॥

मू. (१४७) गंगाए वालुयाए सायरे जलं हिमवओ य परिमाणं । उग्गस्स तवस्स गई गट्युप्पतिं च विलयाए ।। मू. (१४८) सीहे कुडंबुयारस्स पुष्टलं कुक्कुहाईयं अस्से । जाणंति बुद्धिमंता महिलाहिययं न जाणंति ।।

षृ. 'गंगाए० सीहे कु॰' अनयोर्ब्याखया—गङ्गायां वालुकां—वेलुकणान् सागरे—समुद्रे जलं—जलपरिमाणिमत्यर्थः, हिमवतो—महाहिमवन्नगस्य परिमाणम्—ऊर्घ्वाधित्यर्वकपरिधि-प्रतरधनमानं, उग्रस्य—तीव्रस्य तपसो गर्ति—फलप्राप्तिरूपं गर्भोत्पत्तं च 'विलयाए'ति विनताया—नार्यासिहे कुण्डवुकारिमित रुढिगम्यं पुट्टलं—निजजठरोद्भवं 'कुक्कुहाइयं'ति गतिकाले शब्दविशेषं अश्वे—घोटके जानन्ति—अवगच्छन्ति बुद्धिमन्तः—प्रज्ञावन्तः महिलायाः कूटकपटद्रोहपर-वञ्चनपरायाः प्रवलमन्मथाग्निधगधगायमानायाः अतर्कितातुच्छोच्छलितकलकण्ठोद्गीय-मानमधुरगेयध्वनिमृगीकृतमुनिवराया ललाटपट्टतटघटितघनश्रीखण्डतिलकचन्द्रचकोरी-कृतचतुरायाः पीनपयोधरपीठलुठननिर्मलामलकस्थूलमुक्ताफलहारश्वेतद्दग्विषभुजङ्गमगत-विवेक चैतन्यकृतानेकपण्डितायाः हृदयं—गूढान्तःकरणं न जानन्ति—न सम्यगवगच्छन्तीति, उक्तञ्च—

(स्त्री जातौ दाम्भिकता भीरुकता भूयसी विणगजातौ ।
 रोषः क्षत्रियजातौ द्विजातिजातौ पुनर्लोभः ।।
 न स्नेहेन न विद्यया न च धिया रूपेण शौर्येण वा,
 नेर्ष्याचाटुभयार्थदानविनयक्रोधक्षमामाईवैः ।
 लजायौवनभोगसत्यकरुणासत्वादिभिर्वा गुणै
 गृह्यन्ते न विभूतिभिश्च ललना दुःशीलिचत्ता यतः ।।
 प्रिसगुणजुत्ताणं ताणं कइयव्वसंठियमणाणं ।
 न हु भे वीसिसयव्वं महिलाणं जीवलोगंमि ।।

वृ. 'एरिसगुण०' ईंध्शगुणयुक्तानां-उक्तवक्ष्यमाणलक्षणान्वितानां तासां नारीणां कपिकवत्-वानरवत् (अ) संस्थितमनसां नैव 'भे' भवद्भिः विश्वसितव्यं महिलानां जीवलोके इति ॥

मू. (९५०) निद्धत्रयं च खलयं पुष्फेहिं विवज्जियं व आरामं । निद्धिद्धयं च धेणुं लोएवि अतिक्षियं पिंडं ।।

मृ. 'निद्धन्नयं०' यादशिमिति गम्यते, निर्धान्यकं-धान्यकणविवर्जितं 'खलयं'ति धान्य-पवित्रीकरणस्थानं तादशं महिलामण्डलमरमणीयत्वात् सुखधान्यकणाभावाद्य, यादशं पुष्पैः— सुगन्धिकुसुमैर्विवर्जितं चारामं तादशं तरुणीमण्डलं शुभभावनाकुसुमरहितत्वात्, यादशा निर्दुग्धिका—दुग्धरहिताधेनुः—गौस्तादशा भ्रष्टव्रतिनीधर्मध्यानदुग्धाभावात्, तथा लोके अपिशब्दः पूरणार्थे यादशं 'अतिक्षियं'ति सर्वधा तैलांशरहितं पिण्डं—खलखण्डं तादशं महिलाव्याघ्रीमण्डलं

परमार्थेन स्नेहतैल विवर्जितत्वात् ।।

मू. (९५९) जेणंतरेणं निमिसंति लोयणा तक्खणं च विगसंति । तेणंतरेवि हिययं चित्तसहस्साउलं होई ॥

षृ. 'जेणंत०' सङ्कृचितभावं गच्छन्तीत्यर्थः, च पुनस्तेनैव परमवल्लभेन स्वार्धप्राप्तयकारः केणान्तरेण-विना विकसन्ति-प्रफुल्लनेत्राणि भवन्तीत्यर्थः, 'तेणंतरे०' इतिप्राकृतत्वात् तृतीयार्थे सप्तमी, अपिशब्द एवार्थे, तथा कुस्त्रीणां हृदयं पदाचित् स्ववल्लभे (न प्रवर्तते स्ववल्लभे) सत्यि कदाचित् तासां चित्तं—स्वमानसं सहस्राकुलं—स्वकान्तवयितिरक्तपुरुषान्तरसहस्रषु आकुलं मन्मथभावेन परिभ्रमद् भवतीत्यर्थः, शाकिनीवत्, अतो मुनिवरैः-रत्नत्रयरक्षण परैर्मुक्तगृहारमभौरासां कुरण्डामुण्डीदासीयोगिन्यादीनां यथा कथिश्चत् परिचयो न कार्य इति ।

अस्या अन्यदिप व्याख्यान्तरं सदगुरुप्रसादात् कार्यमिति ॥ अथोपदेशान्तरं दददाह-

मू. (९५२) जड्डाणं वड्डाणं निव्विञ्चाणं च निव्विसेसाणं। संसारसूयराणं कहियंपि निरत्थयं होइ।।

मू. (९५३) किं पुत्तेहिं पियाहिं वा अत्थेणिव पिंडिएण बहुएणं। जो मरणदेसकाले न होइ आलंबणं किंचि।।

षृ. 'किं पुत्ते॰' पुत्रैः —अङ्गजैः किं?, न किञ्चित्, पितृभिर्वा किं?, अर्थेनापि पिण्डितेन मीलितेन बहुकेन—प्रभूतेन किं? नन्दमम्मणादीनामिव योऽङ्गजादिकलापः मरणदेशकाले-मरणप्रस्तावे न भवत्यालम्बनं—आधाररूपं किञ्चिदिति ॥

पू. (१५४) पुत्ता चयंति मित्ता चयंति भज्ञावि णं मयं चयइ। तं मरणदेसकाले न चयइ सुविअज्ञिओ धम्मो।।

षृ. 'पुत्ता च०' मातापितरौपुत्रास्त्यजन्ति 'भित्त' मित्राणि त्यजन्ति, सहजिमत्रपर्वमित्रवत्, भार्याऽपीमं-प्रत्यक्षं जीवन्तमित्यर्थमृतं वा स्वकान्तं रजयित, यद्वा भार्याऽपिणमिति वाक्यालङ्करो आर्षत्वादकारिवश्लेषेऽमयमिति अमृतं-जीवन्तं त्यजित जीवन्तमेव स्वकान्तं मुक्लाऽन्यत्-पुरुषान्तरं भर्तृत्वेन प्रतिपद्यते वनमालावत्, यस्मिन् प्रस्तावे ते पुत्रादयस्त्यजन्ति 'त'मिति तस्मिन् प्रस्तावे मरण देशकाले च न त्यजित 'सु'इति जिनाङ्गापूर्वकद्दढभावेन 'वी'ति विशेषेण निरन्तरकरणेनार्जितो धर्म-श्रुतचारित्रस्त्य इति ॥

अथ गाथाचतुष्टयेन धर्ममाहात्म्यं वर्णयन्नाह-

मू. (९५५) धम्मो ताणं धम्मो सरणं धम्मो गई पइड्डा य । धम्मेण सुचरिएण य गम्भइ अजरामरं ठाणं ॥

वृ. 'धम्मो त्ताः' धर्म-सम्यगज्ञानदर्शनचरणात्मकः त्राणं-अनर्थप्रतिहन्ता अर्थसम्पादकश्च तद्धेतत्वात् धर्म शरणं-रागाद्यरिभयभीरुकजनपरिरक्षणं, धर्मो गम्यते-दुःस्थितैः सुस्थितार्थमः श्रीयते इति गतिः, धर्म प्रतिष्ठा-संसारगर्त्तापत्रयाणिवर्गस्याधारः, धर्मेण सुचरितेन-सुष्ठु सेवितेन चशब्दादनुमोदनेन साहाय्यदानादिना गम्यते-अवश्यं प्राप्यते अजरामरं स्थानं-मोक्षलक्षणमित्यर्थः देवकुमारवत् ॥

पू. (९५६) पीइकरो वन्नकरो भासकरो जसकरो य अभयकरो । निव्युइकरो य सययं परित्तबिइजओ धम्मो ।।

वृ. प्रीतिकरः-परमप्रीत्युत्पादकः वर्णकरः-एकदिगव्यापिकीर्त्तिकरः यद्वा वपुषि गौरत्वादिवर्णकरः यद्वा शुद्धाक्षरात्मकज्ञानकरः भाकरः-कान्तिकरः यद्वा भाषाकरः- वचन पटुत्वमाधुर्यादिगुणकर इत्यर्थः, यशःकरः-सर्वदिग्वयापिकीर्त्तिकरः, चशब्दाञ्छाद्या-शब्दकरः, तत्र श्लाघा-तत्स्यान एव साधुवादः शब्दः-अर्थदिग्व्यापीति, अभयकरो-निर्भयकरः निर्वृत्तिकरः -सर्वकर्मक्षयकरः 'पारित्तिब इञ्जठ'त्ति परत्रद्वितीयः, जीवानां परलोके द्वितीय इत्यर्थः ॥

मू. (१५७) अमरवरेसु अणोवमरूवं भोगोवभोगरिद्धी य । विन्नाणनाणमेव य लब्भइ सुकएण धम्मेण ।।

षृ. 'अमरवर०' अमरवरेषु – ०महामहर्धिकदेवेषु – अनुपमरूपं भोगोपभोगऋद्धयश्च विज्ञानं ज्ञानमेव च लभ्यते सुकृतेन धर्मेण प्रदेशिराजमेघकुमार ध्नयानगारानन्दादीनामिव, तत्र भोगाः – गन्धरसस्पर्शा, यद्वा सकृद् भोज्या अन्नादयः उपभोगाः – शब्दरूपविषयाः यद्वा सकृद् भोगाः पुनः पुनः उपभोगाः ते च वस्त्रपात्रादयः ऋद्धयो – देवदेव्यादिपरिवारभूताः, विज्ञानं – अनेकप्रकाररूपादिकरणं, ज्ञानं – मतिश्रुता – विध्रस्पं, यद्वा देवेषु रूपादयः प्राप्यन्ते, इह च 'विन्नाण' ति केवलज्ञानं 'नाणं'ति ज्ञानचतुष्कं त्रिकं द्विकं चेति ।।

मू. (१५८) देविंदचक्क विहत्तणाइ रञ्जाइं इच्छया भोगा। एयाइं धम्मलाभा फलाइं जं चावि निव्वाणं।।

षृ. 'देविंद०' देवेन्द्रचक्रवर्त्तित्वानि राज्यानि गजाश्वरथपदातिभाण्डागारकोष्ठागार-वप्रलक्षणानि, यद्वा स्वाम्य १ मात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ वल ५ शस्त्र ६ मित्राणीति ७, इप्सिता भोगाः, एतानि धर्मलाभात् फलानि भवन्ति, यद्यापि निर्वाणमिति ॥ अथात्रोक्तं निरुपयति—

मू. (९५९) आहारो ९ उच्छासो २ संधि ३ सिराओ य ४ रोमकूवाई ५ । पित्तं ६ रुहिरं ७ सुक्कं ८ गणियं गणियप्पहाणेहिं ।।

षृ. 'आहारो०' अत्र-प्रकीर्णके जीवानां गर्भे आहारस्वरूपं १ गर्भे उच्छ्वासपरिमाणं २ शरीरे सन्धिस्वरूपं ३ शरीरे शिराप्रमाणं ४ वपुषि रोमकूपानि ५ पित्तं ६ रुधिरं ७ शुक्रं ८ चशब्दान्मुहूर्त्तादिकमेतत्पूर्वोक्तं गणितं-सङ्ख्या प्रमाणतो निरूपितं, कैः ? - गणितप्रधानैः - तीर्थकरगणधरादिभिः ॥

मू. (१६०) एयं सोउं सरीरस्स वासाणं गणियप्पागडमहत्यं । मुक्खपउमस्स ईहह सम्पत्तसहस्सपत्तस्स ।।

ष्ट्. 'एयं सोउं॰' एतसूर्वोक्तं श्रुत्वा—आकर्ण्य शरीरस्य तथा वर्षाणां गणितं प्रकटं श्रुत्वा, किंभूतं ? –महान् अर्थो—ज्ञानवैराग्यादिको यस्मात् स महार्थस्तत् यूयं मोक्षपद्ममीहत-वाञ्छत, [14] [13]

किंभूतं श्रुत्वा, किंभूतं ? –महान् अर्थो-ज्ञानवैराग्यादिक यस्मात् स महार्थस्तत् यूयं मोक्षपद्य-मीहत् –वाञ्छत, किंभूतं ? – 'सम्मत्त'ति अनन्तज्ञानपर्यायानन्तदर्शनपर्यायानन्तागुरु-लघुपर्यायादिसहस्रपत्राणि यत्र तत्सम्यक्त्यसहस्रपत्रं, अत्र कर्मणि षष्ठी ।।

मू. (१६१) एयं सगडसरीरं जाइजरामरणवेयणाबहुलं । तह घत्तह काउं जे जह मुझह सब्दुक्खाणं ।।

षृ. 'एयं स०' एतच्छरीरशकटं जातिजरामरणवेदनाबहुलं 'तह घत्तह'ति तथा यतध्वं-तथा यलं कुरुतेत्यर्थः, यद्वा तथा खेटयत 'काउं' कृत्वा-विधाय तपः संयमादिकमिति शेषः, 'जे' इति पादपूरणे, यथा मुश्चत, केभ्यः ? –सर्वदुः खेभ्यः, बलसारराजर्षिवाददिति ॥

२८ पंचमं प्रकीर्णकं तन्दुलवैचारिकं समाप्तम्

इति श्रीहीरविजयसूरिसेवितचरणेन्दीवरे श्रीविजयदानसूरीश्वरे विजयमाने वैराग्यशिरोमणीनां मुक्तशिथिलाचाराणां घनमावघनभव्यशिलीमुखसेवितक्रमणबिसप्रसूनानं श्रीआनन्दविमलसूरीश्वराणां शिष्याणुशिष्येण विजयविमलाख्येन पण्डितश्रीगुणसीभाग्य-गणिप्राप्तन्दुलवैचारिकज्ञानांशेन श्रीतन्दुलवैचारिकस्येयमवचूरि समर्थिता।

अत्र मया भूर्खिशिरो- मिणना जिनाज्ञाविरुद्धं यद् व्याख्यातं लिखितं च तन्मिय रहे परमदयां कृत्वाऽऽगमज्ञैः संशोध्यमिति भद्रम् ॥

> मुनि दीपरलसागरेण संशोधिता सम्पादिता तन्तुलवैचारिकस्य विजयविमल विरचिता टीका (अवच्रिरः) परिसमाप्ता ।

> > ***

ભાવભરી વંદના

જેમના દ્વારા સૂત્રમાં ગુંથાયેલ જિનવાણીનો ભવ્ય વારસો વર્તમાનકાલીન ''આગમસાહિત્ય''માં પ્રાપ્ત થયો એ સર્વે સૂરિવર આદિ આર્ષ પૂજ્યશ્રીઓને-

| | પંચમ ગણધર શ્રી સુધર્મા સ્વામી | | ચૌદ પૂર્વધર શ્રી ભદ્દબાહુ સ્વામી | | |
|------------|-------------------------------|--------------------|------------------------------------|--|--|
| દશ પૂર્વધ૨ | દશ પૂર્વધ૨ શ્રી શય્યંભવસૂરિ | | (અનામી) સર્વે શ્રુત સ્થવીર મહર્ષિઓ | | |
| દેવવ | દેવવાચક ગણિ | | શ્રી શ્યામાચાર્ય | | |
| દેવર્દ્ધિગ | દેવર્દ્ધિગણિ ક્ષમાશ્રમણ | | જિનભદ્ર ગણિ ક્ષમાશ્રમણ | | |
| સંઘ | સંઘદાસગણિ | | સિદ્ધસેન ગણિ | | |
| જિનદાસ | જિનદાસ ગણિ મહત્તર | | અગત્સ્યસિંહ સૂરિ | | |
| શીલ | શીલાંકાચાર્ય | | અભયદેવસૂરિ | | |
| મલય | મલયગિરિસૂરિ | | લે મકીર્તિસૂરિ | | |
| હરિ | હરિભદ્રસૂરિ | | આર્યરક્ષિત સૂરિ (?) | | |
| દ્રો | દ્રોણાચાર્ય | | ચંદ્ર સૂરિ | | |
| વાદિવેતાલ | વાદિવેતાલ શાંતિચંદ્ર સૂરિ | | મલ્લધારી હેમચંદ્રસૂરિ | | |
| શાંતિચં | શાંતિચંદ્ર ઉપાધ્યાય | | ધર્મસાગર ઉપાધ્યાય | | |
| ગુણ | ગુણરત્નસૂરી | | વિજય વિમલગણિ | | |
| વીરભદ્ર | ૠિયાલ | <u>બ્રહ્મ</u> યુનિ | તિલક્સૂરિ | | |
| - · · · | | | | | |

સ્ત્ર-નિર્યુક્તિ - ભાષ્ય - ચૂર્ણિ - વૃત્તિ - આદિના રચયિતા અન્ય સર્વે પૂજ્યશ્રી

વર્તમાન કાલિન આગમ સાહિત્ય વારસાને સંશોધન-સંપાદન-લેખન આદિ દ્વારા મુદ્રીત/અમુદ્રીત સ્વરૂપે રજૂ કર્તા સર્વે શ્રુતાનુરાગી પૂજ્યપુરૂષોને

| આનંદ સાગરસૂરિજી | ચંદ્રસાગર સૂરિજી | મુનિ માણેક | |
|-----------------|---------------------|-------------|--|
| જિન વિજયજી | પુન્ય વિજયજી | ચતુરવિજયજી | |
| જંખુ વિજયજી | અમરમુનિજી | કનૈયાલાલજી | |
| લાભસાગરસુરિજી | આચાર્ય તુલસી | ચંપક સાગરજી | |

સ્મરણાંજલિ

| પં૦ જીવરાજભાઈ | | | પતસિંહ | બાબુ ધનપ | 6 |
|---------------|---|---------------------|--------|----------|-----|
| લાલ | 3 | ų́о | વાનદાસ | પં૦ ભગવ | . 1 |
| | _ | યુત શ્રુત પ્રકાર | વાનદાસ | પ૦ ભગવ | |

· (૪૫ આગમ મૂળ તથા વિવરણનું શ્લોક પ્રમાણદર્શક કોષ્ટક)

| क्रम | आगमसूत्रनाम | मूल | वृत्ति-कर्ता | वृत्ति |
|------|----------------------|--------------|-------------------------------|-------------|
| | | श्लोक प्रमाण | - | श्लोकप्रमाण |
| 9. | आचार | २५५४ | शीलाङ्काचार्य | 92000 |
| ٦. | सूत्रकृत | 2900 | शीलाङ्काचार्य | १२८५० |
| ₹. | स्थान | ३७०० | अभदेवसूरि | १४२५० |
| ٧. | समवाय | १६६७ | अभयदेवसूरि | રૂ ५७५ |
| 4. | भगवती | 94049 | अभयदेवसूरि | १८६१६ |
| ξ. | ज्ञाताधर्मकथा | ५४५० | अभयदेवसूरि | ३८०० |
| છ. | उपासकदशा | ८१२ | अभयदेवसूरि | ۷00 |
| ۷. | अन्तवृद्दशा | ९०० | अभयदेवसूरि | ४०० |
| ٩, | अनुत्तरोपपातिकदशा | १९२ | अभयदेवसूरि | 900 |
| 90. | प्रश्नव्याकरण | 9300 | अभयदेवसूरि | ५६३० |
| 99. | विपाकश्रुत | १२५० | अभयदेवसूरि | ९०० |
| 97. | औपपातिक | ११६७ | अभयदेवसूरि | ३१२५ |
| 93. | राजप्रश्निय | २१२० | मलयगिरिसूरि | 3000 |
| 98. | जीवाजीवाभिगम | ४७०० | मलयगिरिसूरि | 98000 |
| 94. | प्रज्ञापना | ७७८७ | मलयगिरिसूरि | 98000 |
| 94. | सूर्यप्रज्ञप्ति | २२९६ | मलयगिरिसूरि | ९००० |
| 99. | चन्द्रप्रज्ञप्ति | २३०० | मलयगिरिसूरि | ९१०० |
| 96. | जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति | ४४५४ | शान्तिचन्द्रउपाध्याय | 92000 |
| १९थी | निरयावलिका | 9900 | चन्द्रसूरि | ६०० |
| २३. | (पश्च उपाङ्ग) | | <u> </u> | |
| २४. | चतुःशरण | ८० | विजयविमलयगणि | (?) २०० |
| २५. | आतुर प्रत्याख्यान | 900 | गुणरलसूरि (अवचूरि) | (?) 940 |
| २६. | महाप्रत्याख्यान | १७६ | आनन्दसागरसूरि (संस्कृतछाया) | १७६ |
| २७. | भक्तपरिज्ञा | २१५ | आनन्दसागरसूरि (संस्कृतश्राया) | २१५ |
| २८. | तन्दुल वैचारिक | 400 | विजयविमलगणि | (?) 400 |
| २९. | संस्तारक | 944 | गुणरल सूरि (अवचूरि) | 990 |
| ₹0. | गच्छाचार* | १७५ | विजयविमलगणि | १५६० |
| 39. | गणिविद्या | १०५ | आनन्दसागरसूरि (संस्कृतकाया) | ૧૦૫ |

| क्रम | आगमसूत्रना म | • मूल श्लोक प्रमाण | वृत्ति-कर्ता | • वृत्ति श्लोकप्रमाण |
|-------------|---------------------|-----------------------|------------------------------|-------------------------|
| ३ २. | देवेन्द्रस्तव | ३७५ | आनन्दसागरसूरि (संस्कृत छाया) | ३७५ |
| ३ ३. | मरणसमाधि 🛨 | ८३७ | आनन्दसागरसूरि (संस्कृत छावा) | ८३७ |
| ₹8. | निशीथ | ८२१ | जिनदासगणि (चूर्णि) | २८००० |
| <u> </u> | | | सङ्घदासगणि (भाष्य) | ७५०० |
| ३५. | वृहत्कल्प | ४७३ | मलयगिरि+क्षेमकीर्ति | ४२६०० |
| | | | सङ्घदासगणि (भाष्य) | ७६०० |
| ₹. | व्यवहार | इ७इ | मलयगिरि | ३४००० |
| | | | सङ्घदासगणि (भाष्य) | Égoo |
| ₹७. | दशाश्रुतस्कन्ध | ८९६ | - ? - (चूर्षि) | २२२५ |
| ₹८. | जीतकल्प 🛧 | 930 | सिद्धसेनगणि (चूर्णि) | 9000 |
| ३९. | महानिशीथ . | ४५४८ | - | - |
| Yo. | आवश्यक | 930 | हरिभद्रसूरि | २२००० |
| 89. | ओघनिर्युक्ति | नि.१३५५ | द्रोणाचार्य | (?)ও५०० |
| - | पिण्डनिर्युक्ति 🛨 | नि. ८३५ | मलयगिरिसूरि | ৩০০০ |
| ४२. | दशवैकालिक | ८३५ | हरिभद्रसूरि | 9000 |
| ४३. | उत्तराध्ययन | २००० | शांतिसूरि | १६००० |
| 88. | नन्दी | ७०० | मलयगिरिसूरि | ७७३२ |
| ૪५. | अनुयोगद्वार | २००० | मलधारीहेमचन्द्रसूरि | ५९०० |

નોંધ :-

- (१) ઉક્ત ૪૫ આગમ સૂત્રોમાં વર્તમાન કાળે પહેલાં ૧ થી ૧૧ अंगसूत्रो, १२ થી २३ उपांगसूत्रो, २४थी ३३ प्रकीर्णकसूत्रो ३४थी ३૯ छेदसूत्रो, ४० थी ४३ मूळसूत्रो, ४४-४૫ चृत्तिकासूत्रोना नाभे हाल प्रसिद्ध छे.
- (૨) ઉક્ત શ્લોક સેંખ્યા અમે ઉપલબ્ધ માહિતી અને પૃષ્ઠ સંખ્યા આધારે નોંધેલ છે. જે કે તે સંખ્યા માટે મતાંતર તો જોવા મળે જ છે. જેમકે આચાર સૂત્રમાં ૨૫૦૦, ૨૫૫૪, ૨૫૨૫ એવા ત્રણ શ્લોક પ્રમાણ જાણવા મળેલ છે. આવો મત-ભેદ અન્ય સૂત્રોમાં પણ છે.
- (૩) ઇક્ત वृत्ति-આદિ જે નોંધ છે તે અમે કરેલ સંપાદન મુજબની છે. તે સિવાયની પણ वृत्ति-चूर्णि આદિ સાહિત્ય મુદ્રિત કે અમુદ્રિત અવસ્થામાં હાલ ઉપલબ્ધ છે જ.
- (४) गच्छाचार અનे मरणसमाधि ना विકલ્પે चंदावेज्झय અને वीरस्तव प्रकीर्णक આવે છે. જે અમે ''आगमसुत्ताणि'' માં મૂળ રૂપે અને ''આગમદીપ''માં અક્ષરશઃ ગુજરાતી અનુવાદ રૂપે આપેલ છે. તેમજ जीतकल्प જેના વિકલ્પ રૂપે છે એ

पंचकल्पनुं भाष्य અभे ''आगमसुत्ताणि''માં સંપાદીત કર્યું છે.

- (૫) ओघ અને पिण्ड એ બંને निर्युक्ति વિકલ્પે છે. જે હાલ मूळसूत्र ३૫ પ્રસિધ્ધ છે. જે બંનેની वृत्ति અમે આપી છે. તેમજ તેમાં भाष्यनी ગાથાઓ પણ સમાવિષ્ટ થઈ છે.
- (୨) ચાર પ્રकीર્णक सूत्रो અને महानिशीय એ પાંચ આગમની કોઈ वृत्ति આદિ ઉપલબ્ધ થવાનો ઉલ્લેખ મળતો નથી. પ્રकीर्णक ની संस्कृत छाया ઉપલબ્ધ છે તેથી મૂકી છે. નિશીય-दशा-जितकल्प એ ત્રણેની चૂર્ષિ આપી છે. જેમાં दशा અને जीतकल्प એ બંને ઉપરवृत्ति મળતી હોવાનો ઉલ્લેખ છે, પણ અમે તે મેળવી શક્યા નથી. જ્યારે નિશીય ઉપર તો માત્ર વીસમા उદ્દેશक:ની જ वृत्ति નો ઉલ્લેખ મળે છે.

🖈 વર્તમાન કાળે ૪૫ આગમમાં ઉપલબ્ધ નિર્યુक्तिः 🐗

| क्रम | निर्युक्ति | श्लोकप्रमाण | क्रम | निर्युक्ति | ° लोकप्रमाण |
|------|------------------------|-------------|------|------------------------|--------------------|
| 9. | आचार-निर्युक्ति | ४५० | ξ. | आवश्यक-निर्युक्ति | २५०० |
| ٦. | सूत्रकृत-निर्युक्ति | २६५ | ૭. | ओधनिर्युक्ति | १३५५ |
| ₹. | बृहत्कल्प-निर्युक्ति 🖈 | - | ۷. | पिण्डनिर्युक्ति | ८३५ |
| ४. | व्यवहार-निर्युक्ति 🖈 | - | ٩. | दशवैकालिक-निर्युक्ति | ५०० |
| ۹. | दशाश्रुत०-निर्युक्ति | 940 | 90. | उत्तराध्ययन-निर्युक्ति | ७०० |

નોંધ :-

- (૧) અહીં આપેલ શ્लोक प्रमाण એ ગાથા સંખ્યા નથી. ''૩૨ અક્ષરનો એક શ્લોક'' એ પ્રમાણથી નોંધાયેલ શ્लोक प्रमाण છે.
- (૨) ★ वृहत्कल्प અને व्यवहार એ બંને સૂત્રોની निर्युक्ति હાલ भाष्य માં ભળી ગઈ છે. જેનો યથાસંભવ ઉલ્લેખ वृत्तिकार महर्षि એ भाष्य ઉપરની वृत्तिમાં કર્યો હોય તેવું જોવા મળેલ છે.
- (૩) ओघ અને पिण्डनिर्युक्ति स्वतंत्र मूलआगम स्વરૂપે સ્થાન પામેલ છે તેથી તેનું स्वतंत्र संपादन आगम-४१ રૂપે થયેલ છે. (તેમજ આ સંપાદનમાં पણ છે.)
- (४) બાકીની છ निर्युक्तिમાંથી दशाश्रुतस्कन्ध निर्युक्ति ઉપર चूर्णि અને અન્ય પાંચ निर्युक्ति ઉપરની वृत्ति અમે અમારા સંપાદનમાં પ્રકાશીત કરી છે. જ્યાં આ છ निर्युक्ति સ્પષ્ટ અલગ જોઈ શકાય છે.
- (૫) નિર્યુक્તિકર્તા તરીકે भद्रवाहुस्वामी નો ઉલ્લેખ જ જોવા મળે છે.

વર્તમાન કાળે ૪૫ આગમમાં ઉપલબ્ધ માથ્યં

| क्रम | भाष्य | श्लोकप्रमाण | क्रम | भाष्य | गाथाप्रमाण |
|------|----------------|-------------|------|------------------------|------------|
| 9. | निशीषभाष्य | ७५०० | ξ. | आवश्यकभाष्य * | ४८३ |
| ٦. | बृहत्कल्पभाष्य | ७६०० | છ. | ओघनिर्युक्तिभाष्य 🖈 | ३२२ |
| ₹. | व्यवहारभाष्य | ६४०० | ۷. | पिण्डनिर्युक्तिभाष्य 🖈 | ४६ |
| ٧. | पञ्चकल्पभाष्य | ३१८५ | ٩. | दशवैकालिकभाष्य 🛧 | ६३ |
| ч. | जीतकल्पभाष्य | ३१२५ | 90. | उत्तराध्ययनभाष्य (?) | _ |

નોંધ :-

- (૧) निशीष, वृहत्कल्प અને व्यवहारभाष्य ना કર્તા सङ्घदासगणि હોવાનું જણાય છે. અમારા સંપાદનમાં निशीष भाष्य तेनी चूर्णि साथे અને बृहत्कल्प तथा व्यवहार भाष्य तेनी-तेनी वृत्ति साथे सभाविष्ट थयुं છे.
- (२) पञ्चकल्पभाष्य અभारा आगमसुत्ताणि भाग-३८ भां प्रकाशीत थयुं.
- (3) आवश्यकभाष्य માં ગાથા પ્રમાણ ૪૮૩ લખ્યું જેમાં ૧૮૩ ગાથા મૂळभाष्य રૂપે છે અને ૩૦૦ ગાથા અન્ય એક भाष्यની છે. જેનો સમાવેશ आवश्यक सूत्रं-सटीकं માં કર્યો છે. [જો કે विशेषावश्यक भाष्य ખૂબજ પ્રસિધ્ધ થયું છે પણ તે સમગ્ર आवश्यकसूत्र- ઉપરનું भाष्य નથી અને अध्ययनो અનુસારની અલગ અલગ वृत्ति આદિ પેટા વિવરણો તો आवश्यक અને जीतकल्प એ બંને ઉપર મળે છે. જેનો અત્રે ઉલ્લેખ અમે કરેલ નથી.]
- (४) ओघनिर्युक्ति, पिण्डनिर्युक्ति, दशवैकालिकभाष्य नो सभावेश तेनी तेनी वृत्ति भां થયો જ છે. પણ તેનો કર્તા વિશેનો ઉલ્લેખ અમોને મળેલ નથી. [ओघनिर्युक्ति ઉપર 3000 શ્લોક પ્રમાણ भाष्यनो ઉલ્લેખ પણ જોવા મળેલ છે.]
- (૫) उत्तराध्ययनभाष्यनी ગાધા निर्युक्तिમાં ભળી ગયાનું સંભળાય છે (?)
- (ક) આ રીતે અંગ उपांग प्रकीर्णक चूलिका એ ३५ आगम सूत्रो ઉપરનો કોઈ भाष्यનો ઉલ્લેખ અમારી જાણમાં આવેલ નથી. કોઈક સ્થાને સાક્ષી પાઠ-આદિ સ્વરૂપે भाष्यगाथा જોવા મળે છે.
- (૭) भाष्यकर्ता तरीडे મુખ્ય નામ सङ्घदासगणि % તેવા મળેલ છે. તેમજ जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण અને सिद्धसेन गणि नो पश ઉલ્લેખ મળે છે. કેટલાંક भाष्यना કર્તा અજ્ઞાત જ છે.

વિર્તમાન કાળે ૪૫ આગમમાં ઉપલબ્ધ चૂર્णિઃ)

| | | | | -01 | 0-2 |
|------|----------------------------|-------------|------|----------------------|-------------|
| क्रम | चूर्णि | श्लोकप्रमाण | क्रम | चूर्णि | श्लोकप्रमाण |
| 9. | आचार-चूर्णि | رغوه | ۶. | दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि | २२२५ |
| ٦. | सूत्रकृत-चूर्णि | ९९०० | 90. | पञ्चकल्पचूर्णि | ३२७५ |
| ₹. | भगवती-चूर्णि | 3998 | 99. | जीतकल्पचूर्णि | 9000 |
| ጸ. | जीवाभिगम-चूर्णि | 9400 | 92. | आवश्यकचूर्णि | 9८५०० |
| 4. | जंबूद्दीपप्रज्ञप्ति-चूर्णि | १८७९ | 93. | दशवैकालिकचूर्णि | ७००० |
| ξ. | निशीथचूर्णि | २८००० | 98. | उत्तराध्ययनचूर्णि | ५८५० |
| ৩. | वृहत्कल्पचूर्णि | 98000 | 9 ५. | नन्दीचूर्णि | 9400 |
| ۷. | व्यवहारचूर्णि | 9200 | 9Ę. | अनुयोगदारचूर्णि | २२६५ |

નોંધ ઃ-

- (૧) ઉક્ત ૧*૬* चૂર્णિમાંથી નિશીથ , दशाश्रुतस्कन्ध, जीतकल्प એ ત્રણ चूर्णિ અમારા આ સંપાદનમાં સમાવાઈ ગયેલ છે.
- (२) आचार, सूत्रकृत, आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दी, अनुयोगद्वार એ સાત चूर्णि પૂજ્યપાદ આગમોદ્ધારક શ્રી એ પ્રકાશીત કરાવી છે.
- (૩) दशवैकालिकनी બીજી એક चूर्णि જે अगत्त्यसिंहसूरिकृत છે તેનું પ્રકાશન પૂજ્ય શ્રી પુન્યવિજયજીએ કરાવેલ છે.
- (४) जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिचूर्णि विशे હીરાલાલ કાપડીયા પ્રશ્નાર્થચિક ઉભું કરે છે. भगवती चूर्णि तो भणेश्व છे, पण्ड ७७ प्रકाशीत થઈ नथी. तेभश्व वृहत्कल्प, व्यवहार, पञ्चकल्प એ त्रण्ड ७२तप्रतो અમे श्रेष्ठ छे पण्ड प्रकाशीत थयानुं श्राण्डमां नथी.
- (૫) चूर्णिकार तरीके जिनदासगणिमहत्तरन् । नाम मुખ्यत्वे संભળાય છે. કેટલાકના મતે અમુક चूर्णिना કર્તાનો સ્પષ્ટોલ્લેખ મળતો નથી.

"આગમ-પંચાંગી" એક ચિન્ત્ય બાબત"

- ૧ વર્તમાન કાળે પ્રાપ્ત આગમ સાહિત્યની વિચારણા પછી ખરેખર આગમના પાંચ અંગોમાં કેટલું અને શું ઉપલબ્ધ છે તે જાણ્યા પછી એક પ્રશ્ન થાય કે આગમ પંચાંગી ની વાતો કેટલી ચિન્ત્ય છે. અંગ-उपांग-प्रकीर्णक-चूलिका એ ૩૫ આગમો ઉપર पाष्य નથી. એટલે ૩૫ આગમનું એક અંગ તો અપ્રાપ્ય જ બન્યું. સૂત્ર પરત્વે ઉપલબ્ધ નિર્યુक्तિ ફક્ત છ છે. એટલે ૩૯ આગમોનું એક અંગ અપ્રાપ્ય જ બન્યું. આ રીતે ક્યાંક भाष्य, ક્યાંક નિર્યુक્તિ અને ક્યાંક चૂર્णિના અભાવે વર્તમાન કાળે સુવ્યવસ્થિત पंचांगी એક માત્ર आवश्यक सूत्रની ગણાય.
- ૨ નંદીસૂત્ર માં પંચાંગીને બદલે સંग્રहणી, પ્રતિપત્તિ ઓ વગેરેના પણ ઉલ્લેખ છે.

Þ ૪૫ આગમ અંતર્ગત વર્તમાન કાળે ઉપલબ્ધ વિભાગો 🐗

સૂચના :- અમે સંપાદીત કરેલ आगमसुत्ताणि-सटीकं માં બેકી નંબરના પૃષ્ઠો ઉપર જમણી બાજુ आगमसूत्र ના નામ પછી અંકો આપેલ છે. જેમકે ૧/૩/૬/૨/૫૪ વગેરે. આ અંકો તે તે આગમના વિભાગીકરણને જણાવે છે. જેમકે आचारમાં પ્રથમ અંક શ્રुतस्कन्धनો છે તેના વિભાગ રૂપે બીજો અંક चूला છે તેના પેટા વિભાગ રૂપે ત્રીજો અંક अध्ययन નો છે. તેના પેટા વિભાગ રૂપે ચોથો અંક उद्देशक નો છે. તેના પેટા વિભાગ રૂપે છેલ્લો અંક મૂलનો છે. આ મૂल ગદ્ય કે પદ્ય હોઈ શકે. જો ગદ્ય હોય તો ત્યાં પેરેબ્રાફ સ્ટાઈલથી કે છુટુ લખાણ છે અને गाया/પદ્ય ને પદ્યની સ્ટાઈલથી ॥ – ॥ ગોઠવેલ છે.

ં પ્રત્યેક આગમ માટે આ રીતે જ ઓલ્લિકમાં (/) પછી ના વિભાગને તેના-તેના પેટા-પેટા વિભાગ સમજવા.

જ્યાં જે-તે પેટા વિભાગ ન હોય ત્યાં (/-) ઓબ્લિક પછી ડેસ મુકીને તે વિભાગ ત્યાં નથી તેમ સુચવેલું છે.]

- (१) आचार श्रुतस्कन्धः/चूला/अध्ययनं/उद्देशकः/मूलं चूला नामङ पेटा विભाग जीका श्रुतस्ङन्ध मां क छे.
- (२) सूत्रकृत श्रुतस्कन्धः/अध्ययनं/उद्देशकः/मूलं
- (३) स्थान स्थानं/अध्ययनं/मूलं
- (४) समवाय समवायः/मूलं
- (५) भगवती शतकं/वर्गाः-अंतरशतकं/उद्देशकः/मूलं अर्धी शतकना पेटा विलागमां ले नामो छे. (१) वर्गः (२) अंतर्शतक डेमडे शतक २१, २२, २७ मां शतक ना पेटा विलागनुं, नाम वर्णः ४ सावेब छे. शतक ३३,३४,३५,३६,४० ना पेटा विलागने अंतरशतक अथवा शतकशतक नामथी ओणभावाय छे.
- (६) ज्ञाताधर्मकथा- श्रुतस्कन्धः/यर्गः/अध्ययनं/मूलं પહેલા श्रुतस्कन्ध માં अध्ययन જ છે. બીજા श्रुतस्कन्ध नो પેટાવિભાગ वर्गा नामे છે અને ते वर्गा ना પેટા વિભાગમાં अध्ययन છે.
- (७) उपासकदशा- अध्ययनं/मूलं
- (८) अन्तकृद्दशा- वर्गः/अध्ययनं/मूलं
- (९) अनुत्तरोपपातिकदशा- वर्गः/अध्ययनं/मूलं
- (१०) प्रश्नव्याकरण- द्वारं/अध्ययनं/मूलं आश्रव અને संवर એવા સ્પષ્ટ બે ભેદ છે જેને आश्रवद्वार અને संवरद्वार કહ્યા છે. (કોઈક द्वार ने બદલે शुतास्त्रन्य શબ્દ પ્રયોગ પણ કરે છે)
- (१९) विपाकश्रुत- श्रुतस्कन्धः/अध्ययनं/मूलं
- (१२) औपपातिक- मूलं
- (१३) राजप्रश्नीय- मूलं

(१४) जीवाजीवाभिगम- *प्रतिपत्तिः/* उद्देशकः/मूलं

આ આગમમાં ઉક્ત ત્રણ વિભાગો કર્યા છે તો પણ સમજશ માટે प्रतिपत्तिः પછી એક પેટાવિભાગ -ોંધનીય છે. કેમકે प्रतिपत्ति -३-માં नैरइय, तिरिक्खजोणिय, मनुष्य, देव એવા ચાર પેટાવિભાગો પડે છે. તેથી तिपत्ति(नेरइयजादि)/उद्देशकः/मूलं એ રીતે સ્પષ્ટ અલગ પાડેલા છે, એજ રીતે દશમી प्रतिपत्ति ना उद्देशकः नव नथी पक्ष ते પેટાવિભાગ प्रतिपत्तिः नामे જ છે.

- (१५) प्रज्ञापना- पदं/उद्देशकः/द्वारं/मूलं पदना પેટા વિભાગમાં ક્યાંક उद्देशकः છે, ક્યાંક हारं છે પણ પद-૨૮ના પેટા વિભાગમાં उद्देशकः અને તેના પેટા વિભાગમાં द्वारं પણ છે.
- (१६) सूर्यप्रक्ति- प्राभृतं/प्राभृतप्राभृतं/मूलं
- (९७) चन्द्रप्रक्तिः- प्राभृतं/प्राभृतप्राभृतं/मूलं આગમ ૧,5-૧૭માં प्रामृतप्रामृत ના પણ प्रतिपत्तिः નામક પેટા વિભાગ છે. પણ उद्देशकः आદિ મુજબ તેનો વિશેષ વિસ્તાર થાયેલ નથી.
- (१८) जम्बूदीपप्रक्तिः वक्षस्कारः/मूलं
- (१९) निरयावलिका अध्ययनं/मूलं
- (२०) कल्पवतंसिका अध्ययनं/मूलं
- (२९) पुष्पिता अध्ययनं/मूलं
- (२२) पुष्पचृतिका अध्ययनं/मूलं
- (२३) विण्हिदशा अध्ययनं/मूलं આગમ ૧૯ થી ૨૩ निरवाविलकादि नाभથી સાથે જોવા મળે છે કેમકે તેને ઉપાંગના પાંચ વર્ગ તરીકે સુત્રકારે ઓળખાવેલા છે. જેમાં વર્ગ-૧, निरवाविलका, વર્ગ-२ कल्पवतंतिका... વગેરે જાણવા
- (२४ थी ३३) चतुःशरण (आदि दशेपयत्रा) मूलं
- (३४) निशीय उद्देशकः/मूलं
- (३५) बृहत्कल्प उद्देशकः/मूलं
- (३६) व्यवहार उद्देशकः/मूलं
- (३७) दशाश्रुतस्कन्ध दशा/मूलं
- (३८) जीतकल्प मूलं
- (३९) महानिशीय अध्ययनं/उद्देशकः/मूलं
- (४०) **आवश्यक** अध्ययनं/मूलं
- (४१) ओघ/पिण्डनियुक्ति मूलं
- (४२) दशवैकालिक अध्ययनं/उद्देशकः/मूलं
- (४३) उत्तराध्ययन अध्ययनं//मूलं
- (४४- ४५) नन्दी-अनुयोगद्वार मूलं

[9]

અમારા સંપાદીત ૪૫ આગમોમાં આવતા મૂલ નો અંક તથા તેમાં સમાવિષ્ટ ગાથા

| क्रम | आगमसूत्र | मूलं | गाथा | क्रम | आगमसूत्र | मूलं | गाथा |
|--------------|--------------------|------------|------|-------------|----------------------|------------|------|
| 9. | आचार | ५५२ | १४७ | २४. | चतुःशरण | ६३ | ६३ |
| ٠ | सूत्रकृत | ८०६ | ७२३ | ર ષ. | आतुरप्रत्याख्यान | ড 9 | ७० |
| ₹. | स्थान | 9090 | १६९ | २६. | महाप्रत्याख्यानं | १४२ | १४२ |
| ٧,٠ | समवाय | 3 ८ ३ | ९३ | २७. | भक्तपरिज्ञा | १७२ | १७२ |
| ۷. | भगवती | १०८७ | 398 | २८. | तंदुलवैचारिक | 959 | 938 |
| Ę . | ज्ञाताधर्मकथा | २४१ | 40 | २९. | संस्तारक | 933 | 933 |
| છ. | उपासक दशा | ৩३ | 93 | ₹0. | गच्छाचार | 930 | १३७ |
| ۵. | अन्तकृद्दशा | ६२ | 97 | ₹9. | गणिविद्या | ८२ | ८२ |
| የ. | अनुत्तरोपपातिक | 93 | ጸ | ₹₹. | देवेन्द्रस्तव | ४०७ | १०७ |
| 90. | प्रश्नव्याकरण | ४७ | 98 | ₹₹. | मरणसमाधि | ६६४ | ६६४ |
| 99. | विपाकश्रुत | ४७ | Ę | ₹¥. | निशीष | १४२० | _ |
| 97. | औपपातिक | ৩৩ | ३० | ३ ५. | बृहत्कल्प | २१५ | - |
| 93. | राजप्रश्निय | ८ ५ | - | ₹. | व्यवहार | २८५ | - |
| 98. | जीवाभिगम | ३९८ | ९३ | રૂછ. | दशाश्रुतस्कन्ध | 998 | ५६ |
| 94. | प्रज्ञापना | ६२२ | २३१ | ३८. | जीतकल्प | 903 | 903 |
| 9٤. | सूर्यप्रज्ञप्ति | २१४ | १०३ | ३९. | महानिशीथ | १५२८ | اع |
| 90, | चन्द्रप्रज्ञप्ति | २१८ | 900 | ٧٥. | आवश्यक | ९२ | २९ |
| 94. | जम्बूदीपप्रज्ञप्ति | ३६५ | 939 | ٧٩. | ओघनिर्युक्ति | ११६५ | 99६५ |
| 9 ९. | निरयावलिका | 29 | _ | ४ 9. | पिण्डनिर्युक्ति | ७१२ | ७१२ |
| २०. | कल्पवतंसिका | વ | 9 | ४२. | दशवैकालिक | ५४० | 494 |
| ₹9. | पुष्पिता | 99 | 2 | ٧٤. | उत्तरा ध्यय न | <u> </u> | १६४० |
| २२. | पुष्पचूलिका | 3 | 9 | 88. | नन्दी | 9 ६ ८ | ९३ |
| २३. | वण्हिदशा | 4 | 9 | ४५. | अनुयोगद्वार | ३५० | 989 |

નોંધ :- ઉક્ત गाद्या સંખ્યાનો સમાવેશ મૂત્તં માં થઈ જ જાય છે. તે મૂત્ત સિવાયની અલગ ગાથા સમજવી નહીં. મૂત્ત શબ્દ એ અમો સૂત્ર અને ગાથા બંને માટે નો આપેલો સંયુક્ત અનુક્રમ છે. गાથા બધાંજ સંપાદનોમાં સામાન્ય અંક ધરાવતી હોવાથી તેનો અલગ અંક આપેલ છે. પણ સૂત્રના વિભાગ દરેક સંપાદકે ભિન્નભિન્ન રીતે કર્યા હોવાથી અમે સૂત્રાંક જુદો પાડતા નથી.

🗕 અમારા પ્રકાશનો :–

- [१] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया १ सप्ताङ्ग विवरणम्
- [२] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया २ सप्ताङ्ग विवरणम्
- [3] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया ३ सप्ताङ्ग विवरणम्
- [४] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया ४ सप्ताङ्ग विवरणम्
- प्रे व्यक्तमाला
- डि चैत्यवन्दन पर्वमाला
- [७] चैत्यवन्दन सङ्ग्रह तीर्थजिनविशेष
- [८] चैत्यवन्दन चोविशी
- (८) शत्रुअय भिक्त (आवृत्ति-दो)
- [90] अभिनव जैन पश्चाङ्ग २०४६
- [૧૧] અભિનવ ઉપદેશ પ્રાસાદ ૧- શ્રાવક કર્તવ્ય ૧ થી ૧૧
- [૧૨] અભિનવ ઉપદેશ પ્રાસાદ ૨- શ્રાવક કર્તવ્ય ૧૨ થી ૧૫
- [૧૩] અભિનવ ઉપદેશ પ્રાસાદ ૩- શ્રાવક કર્તવ્ય ૧ક થી ૩ક
- ં [૧૪] નવપદ શ્રીપાલ (શાશ્વતી ઓળીના વ્યાખ્યાન રૂપે)
 - [૧૫] સમાધિ મરણ [વિધિ સૂત્ર **પદ્ય** આરાધના-મરણભેદ-સંગ્રહ]
 - [૧૬] ચૈત્યવંદન માળા [૭૭૯ ચૈત્યવનંદનોનો સંગ્રહ]
 - [૧૭] તત્વાર્થ સૂત્ર પ્રબોધટીકા અધ્યાય-૧]
 - [૧૮] તત્વાર્થ સૂત્રના આગમ આધાર સ્થાનો
 - [૧૯] સિદ્ધાચલનો સાથી [આવૃત્તિ બે]
 - [૨૦] ચૈત્ય પરિપાટી
 - [૨૧] અમદાવાદ જિનમંદિર ઉપાશ્રય આદિ ડિરેક્ટરી
 - [૨૨] શત્રુંજય ભક્તિ [આવૃત્તિ બે]
 - [૨૩] શ્રી નવકારમંત્ર નવલાખ જાપ નોંધપોથી
 - [૨૪] શ્રી ચારિત્ર પદ એક કરોડ જાપ નોંધપોથી
 - [૨૫] શ્રી બારવ્રત પુસ્તિકા તથા અન્ય નિયમો [આવૃત્તિ ચાર]
 - [૨૬] અભિનવ જૈન પંચાંગ ૨૦૪૨ [સર્વપ્રથમ ૧૩ વિભાગોમાં]
 - [૨૭] શ્રી જ્ઞાનપદ પૂજા
 - [૨૮] અંતિમ આરાધના તથા સાધુ સાધ્વી કાળધર્મ વિધિ
 - [૨૯] શ્રાવક અંતિમ આરાધના [આવૃત્તિ ત્રણ]
 - [30] વીતરાગ સ્તુતિ સંચય [૧૧૫૧ ભાવવાહી સ્તુતિઓ]
 - [૩૧] (પૂજ્ય આગમોદ્વારક શ્રી ના સમુદાયના) કાયમી સંપર્ક સ્થળો
 - [૩૨] તત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર અભિનવ ટીકા અધ્યાય–૧
 - [૩૩] તત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર અભિનવ ટીકા અધ્યાય-૨
 - [૩૪] તત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર અભિનવ ટીકા અધ્યાય-૩
 - [૩૫] તત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર અભિનવ ટીકા અધ્યાય-૪

[35] તત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર અભિનવ ટીકા – અધ્યાય-૫ [30] તત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર અભિનવ ટીકા – અધ્યાય-5 [3૮] તત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર અભિનવ ટીકા – અધ્યાય-૭ [3૯] તત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર અભિનવ ટીકા – અધ્યાય-૮ [૪૦] તત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર અભિનવ ટીકા – અધ્યાય-૯ [૪૧] તત્વાર્થાધિગમ સૂત્ર અભિનવ ટીકા – અધ્યાય-૧૦

પ્રકાશન ૧ થી ૪૧ અભિનવશ્રુત પ્રકાશને પ્રગટ કરેલ છે.

| | | | |
|---------------|------------------|-------------------|---------------------------|
| [४२] | आयारो | [आगमसुत्ताणि-१] | पढमं अंगसुत्तं |
| [४३] | सूयगडो | [आगमसुत्ताणि-२] | वीअं अंगसुत्तं |
| [88] | ठाणं | [आगमसुत्ताणि-३] | तइयं अंगसुत्तं |
| [४५] | समवाओ | [आगमसुत्ताणि-४] | चउत्थं अंगसुत्तं |
| [४६] | विवाहपन्नति | [आगमसुत्ताणि-५] | पंचमं अंगसुत्तं |
| [૪૭] | नायाधम्मकहाओ | [आगमसुत्ताणि-६] | छड्डं अंगसुत्तं |
| [४८] | उवासगदसाओ | [आगमसुत्ताणि-७] | सत्तमं अंगसुत्तं |
| [88] | अंतगडदसाओ | [आगमसुत्ताणि-८] | अहुमं अंगसुत्तं |
| [५ ၀] | अनुत्तोववाइयदसाओ | [आगमसुत्ताणि-९] | नवमं अंगसुत्तं |
| [५१] | पण्हावागरणं | [आगमसुत्ताणि-१०] | दसमं अंगसुत्तं |
| [५२] | विवागसूयं | [आगमसुत्ताणि-११] | एक्षरसमं अंगसुत्तं |
| [५३] | उववाइयं | [आगमसुत्ताणि-१२] | पढमं उदंगसुत्तं |
| [५૪] | रायप्पसेणियं | [आगमसुत्ताणि-१३] | वीअं उवंगसु तं |
| [५५] | जीवाजीवाभियमं | [आगमसुत्ताणि-१४] | तइयं उवंगसुत्तं |
| [५६] | पन्नवणासुत्तं | [आगमसुत्ताणि-१५] | चउत्यं उवंगसुत्तं |
| [५७] | सूरपन्नतिः | [आगमसुत्ताणि-१६] | पंच मं उवंगसुत्तं |
| [५८] | चंदपत्रतिः | [आगमसुत्ताणि-१७] | छट्टं उवंगसुत्तं |
| [५९] | जंबूदीवपन्नति | [आगमसुत्ताणि-१८] | सत्तमं उवंगसुत्तं |
| [ξο] | निरयावलियाणं | [आगमसुत्ताणि-१९] | अडुमं उवंगसुत्तं |
| [६१] | कप्पवडिंसियाणं | [आगमसुताणि-२०] | नवमं उवंगसुत्तं |
| [६२] | पुष्फियाणं | [आगमसुत्ताणि-२१] | दसमं उवंगसुत्तं |
| [ξ ξ] | पुष्फचूलियाणं | [आगमसुत्ताणि-२२] | एबारसमं उवंगसुत्तं |
| [ξ ૪] | वण्हिदसाणं | [आगमसुताणि-२३] | बारसमं उवंगसुत्तं |
| [६५] | चउसरणं | [आगमसुत्ताणि-२४] | पढमं पईण्णगं |
| [ξξ] | आउरपद्मक्खाणं | [आगमसुत्ताणि-२५] | बीअं पईण्णगं |
| [६७] | महापद्मक्खाणं | [आगमसुत्ताणि-२६] | तीइयं पईण्णगं |
| [६८] | भत्तपरिण्णा | [आगमसुत्ताणि-२७] | चउत्यं पईण्णमं |
| | | = = | |

| [६९] | तंदुलवेयालियं | [आगमसुत्ताणि-२८] | पंचमं पईण्णगं |
|---------------|------------------|---------------------|-------------------|
| [00] | सं धा रगं | - | |
| | | [आगमसुत्ताणि-२९] | छठ्ठं पईण्णगं |
| [69] | गच्छायार | [आगमसुत्ताणि-३०/१] | सत्तमं पईण्णगं-१ |
| [७२] | चंदावेज्झयं | [आयमसुत्ताणि-३०/२] | सत्तमं पईण्णगं-२ |
| [ছ ខ] | गणिविञ्जा | [आगमसुत्ताणि-३१] | अडुमं पईण्णगं |
| [૪૪] | देविंदत्यओ | [आगमसुत्ताणि-३२] | नवमं पईण्णगं |
| [૭૫] | मरणसमाहि | [आगमसुत्ताणि-३३/१] | दसमं पईण्णगं-१ |
| [७६] | वीरत्यव | [आगमसुत्ताणि-३३/२] | दसमं पईण्णगं-२ |
| [७७] | निसीह | [आगमसुत्ताणि-३४] | पढमं छेयसुत्तं |
| [७८] | बुहत्कप्पो | [आगमसुत्ताणि-३५] | बीअं छेयसुत्तं |
| [৩९] | ववहार | [आगमसुत्ताणि-३६] | तइयं छेयसुत्तं |
| [८०] | दसासुयक्खंधं | [आगमसुत्ताणि-३७] | चउत्यं छेयसुत्तं |
| [८१] | जीयकप्पो | [आगमसुत्ताणि-३८/१] | पंचमं छेयसुत्तं-१ |
| [૮૨] | पंचकप्पभास | [आगमसुत्ताणि-३८/२] | पंचमं छेयसुत्तं-२ |
| [٤٤] | महानिसीहं | [आगमसुत्ताणि-३९] | छड्ठं छेयसुत्तं |
| [८४] | आवसस्सयं | [आगमसुत्ताणि-४०] | पढमं मूलसुत्तं |
| [८५] | ओहनिञ्जुत्ति | [आगमसुत्ताणि-४१/१] | बीअं मूलसुत्तं-१ |
| [८६] | पिंडनिञ्जुत्ति | [आगमसुत्ताणि-४१/२] | बीअं मूलसुत्तं-२ |
| [১৫] | दसवेयालियं | [आगमसुत्ताणि-४२] | तइयं मुलसुत्तं |
| [८८] | उतरज्झयणं | [आगमसुत्ताणि-४३] | चउत्थं मूलसुत्तं |
| [۷۶] | नंदीसूयं | [आगमसुत्ताणि-४४] | पढमा चूलिया |
| [66] | अनुओगदारं | [आगमसुत्ताणि-४५] | बितिया चूलिया |
| | | | |

પ્રકાશન ૪૨ થી ૯૦ આગમશુત પ્રકાશને પ્રગટ કરેલ છે.

| [૯૧] | આયાર - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૧] | પહેલું અંગસૂત્ર |
|------|--------------------|-------------------------|------------|------------------|
| [૯૨] | સૂયગડ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૧] | બીજું અંગસૂત્ર |
| [૯૩] | ઠાશ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૧] | ત્રીજું અંગસૂત્ર |
| [૯૪] | સમવાય - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૧] | ચોથું અંગસૂત્ર |
| [૯૫] | વિવાહપત્રત્તિ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૨] | પાંચમું અંગસૂત્ર |
| [68] | નાયાધમ્મકહા - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૩] | છઠ્ઠું અંગસૂત્ર |
| [ලෙ] | ઉવાસગદસા – | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૩] | સાતમું અંગસૂત્ર |
| [66] | અંતગડદસા - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૩] | આઠમું અંગસૂત્ર |
| [૯૯] | અનુત્તરોપપાતિકદસા- | ગુજરાતી અ નુ વાદ | [આગમદીપ-૩] | નવમું અંગસૂત્ર |
| [∞9] | પશ્હાવાગરશ- | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૩] | દશમું અંગસૂત્ર |
| | | | | |

| | | [10] | |
|----------------|--------------------------|----------------|---------------------|
| [909] | વિવાગસૂય - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૩] |
| [૧૦૨] | ઉવવાઇય | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૪] |
| [fO3] | રાયપ્પસેબ્રિય - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૪] |
| [80¥] | જીવાજીવાભિગમ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૪] |
| [૧૦૫] | પત્રવજ્ઞાસુત્ત | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૪] |
| [205] | सूरपन्नत्ति - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] |
| [૧૦૭] | ચંદપત્રતિ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] |
| [90८] | જંબુદીવપત્રતિ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] |
| [906] | નિરયાવલિયા - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] |
| [૧૧૦] | કપ્પવર્ડિસિયા – | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] |
| [૧૧૧] | પુપ્ફિયા - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીય-૫] |
| [૧૧૨] | પુપ્કચૂલિયા - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-પ] |
| [૧૧૩] | વષ્ટિકસા - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] |
| [૧૧૪] | ચઉસરણ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] |
| [૧૧૫] | આઉરપ્પચ્ચકખાણ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] |
| [99 <i>5</i>] | મહાપચ્ચકખાણ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] |
| [૧૧૭] | ભત્તપરિજ્ઞા - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] |
| [११८] | તંદુલવેયાલિય - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-ક] |
| [૧૧૯] | સંથારગ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] |
| [૧૨૦] | ગચ્છાયાર - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-ક] |
| [૧૨૧] | ચંદાવેજઝય - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-ક] |
| [૧૨૨] | ગણિવિજ્જા - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] |
| [૧૨૩] | દેવિંદત્યઓ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] |
| [૧૨૪] | વીરત્થવ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] |
| [૧૨૫] | નિસીહ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] |
| [૧૨૬] | બુહતકપ્પ – | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ- <i>s</i>] |
| [૧૨૭] | વવહાર - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] |
| [૧૨૮] | દસાસુયક્ખંધ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ- <i>૬</i>] |
| [૧૨૯] | જીયકપ્પો - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] |
| [૧૩૦] | મહાનિસીહ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] |
| [939] | આવસ્સય - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૭] |
| [૧૩૨] | ઓહનિજજુત્તિ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૭] |
| [৭૩૩] | પિંડનિ જજુ ત્તિ - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૭] |
| [૧૩૪] | દસવેયાલિય - | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૭] |
| | | | |

અગિયારમું અંગસૂત્ર પહેલું ઉપાંગસૂત્ર બીજું ઉપાંગસૂત્ર ત્રીજું ઉપાંગસૂત્ર ચોથું ઉપાંગસૂત્ર પાચમું ઉપાંગસૂત્ર છક્ષં ઉપાંગસૂત્ર સાતમું ઉપાંગસૂત્ર આઠમું ઉપાંગસૂત્ર નવમું ઉપાંગસૂત્ર દશમું ઉપાંગસૂત્ર અગિયારમું ઉપાંગસૂત્ર બારમું ઉપાંગસૂત્ર પહેલો પયત્રો બીજો પયત્રો ત્રીજો પયજાો ચોથો પયત્રો પાંચમો પયત્રો છક્રો પયત્રો સાતમો પયક્ષો-૧ સાતમો પયત્રો-૨ આઠમો પયજ્ઞો નવમો પયશ્રો દશમો પયન્નો પહેલું છેદસૂત્ર બીજું છેદસૂત્ર ત્રીજું છેદસૂત્ર ચોથું છેદસૂત્ર પાંચમું છેદસૂત્ર છટ્ટં છેદસૂત્ર પહેલું મૂલસુત્ર બીજું મૂલસુત્ર-૧ બીજું મૂલસુત્ર-૨ ત્રીજું મુલસૂત્ર

[૧૩૫] ઉત્તરજૂઝયણ -ગુજરાતી અનુવાદ [આગમદીપ-૭] ચોથું મૂલસુત્ર [૧૩૬] નંદીસુત્તં -ગુજરાતી અનુવાદ [આગમદીપ-૭] પહેલી ચૂલિકા [૧૩૭] અનુયોગદાર -ગુજરાતી અનુવાદ આગમદીપ-૭ો બીજી ચૂલિકા

પ્રકાશન ૯૧ થી ૧૩૭ આગમદીપ પ્રકાશને પ્રગટ કરેલ છે.

सटीकं-१०/११

| | | પ્રકાશન ૯૧ થા ૧૩૭ આગમદાપ | ા પ્રકાશન પ્રગ | ાટ કરલ છ |
|---|-------|--|----------------|-----------|
| | [૧૩૮] | દીક્ષા યોગાદિ વિધિ | | |
| | [૧૩૯] | ૪૫ આગમ મહાપૂજન વિધિ | | |
| | [980] | आचाराङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१ |
| | [१४१] | सूत्रकृताङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-२ |
| | [१४२] | स्थानाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-३ |
| | [१४३] | समवायाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-४ |
| | [१४४] | भगवतीअङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-५/६ |
| - | [૧૪५] | ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-७ |
| | [१४६] | उपासकदशाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-७ |
| | [१४७] | अन्तकृदशाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-७ |
| | [१४८] | अनुत्तरोपपातिकदशाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-७ |
| | [१४९] | प्रश्नव्याकरणाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-७ |
| į | [१५०] | विपाकश्रुताङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-८ |
| ĺ | [949] | औपपातिकउपाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-८ |
| İ | [94२] | राजप्रश्नियउपाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-८ |
| | [१५३] | जीवाजीवाभिगमउपाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-९ |
| | [१५४] | प्रज्ञापनाउपाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१०/ |
| | [૧५५] | सूर्यप्रज्ञप्तिउपाङ्ग सू त्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१२ |
| | [૧५६] | चन्द्रप्रज्ञप्तिउपाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१२ |
| - | [૧५७] | जम्बूद्वीवप्रज्ञतिउपाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१३ |
| | [१५८] | निरयावलिकाउपाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१४ |
| | [१५९] | कल्पवतंसिकाउपाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१४ |
| | 9६०] | पुष्पिताउपाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१४ |
| | 9६9] | पुष्पचूलिकाउपाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१४ |
| [| [१६२] | वण्हिदसाउपाङ्गसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१४ |
| | 9६३] | चतुःशरणप्रकीर्णकसूत्र सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१४ |
| | १६४] | आतुरप्रत्याव्यानप्रकीर्णकसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१४ |
| | [૧६५] | महाप्रत्याख्यानप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१४ |
| [| 9६६] | भक्तपरिज्ञाप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं | आगमसुत्ताणि | सटीकं-१४ |
| | | | | |

| [१६७] | तंदुलवैचारिकप्रकीर्णकसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि सटीकं-१४ |
|-------|--------------------------------------|----------------------------|
| [१६८] | संस्तारकप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं | आगमसुत्ताणि सटीकं-१४ |
| [१६९] | गच्छाचारप्रकीर्णकसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि सटीकं-१४ |
| [900] | गणिविद्याप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं | आगमसुत्ताणि सटीकं-१४ |
| [9७9] | देवेन्द्रस्तवप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं | आगमसुत्ताणि सटीकं-१४ |
| [१७२] | मरणसमाधिप्रकीर्णकसूत्रं सच्छायं | आगमसुत्ताणि सटीकं-१४ |
| [१७३] | निशीयछेदसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि सटीकं-१५-१६-१७ |
| [१७४] | बृहत्कल्पछेदसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि सटीकं-१८-१९-२० |
| [૧७५] | व्यवहारछेदसूत्रं सटीकं | आगगम सुत्ताणि सटीकं-२१-२२ |
| [१७६] | दशाश्रुतस्कन्धछेदसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि सटीकं-२३ |
| [१७७] | जीतकल्पछेदसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि सटीकं-२३ |
| [୨७८] | महानिशीयसूत्रं (मूलं) | आगमसुत्ताणि सटीकं-२३ |
| [१७९] | आवश्यकमूलसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि सटीकं-२४-२५ |
| [9८0] | ओघनिर्युक्तिमूलसूत्रं सटीकं | आगम सुत्तामि सटीकं-२६ |
| [969] | पिण्डनिर्युक्तिमूलसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि सटीकं-२६ |
| [१८२] | दशवैकालिकमूलसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि सटीकं-२७ |
| [923] | उत्तराध्ययनमूलसूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि सटीकं-२८-२९ |
| [१८४] | नन्दी-चूलिकासूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि सटीकं-३० |
| [१८५] | अनुयोगद्वारचूलिकासूत्रं सटीकं | आगमसुत्ताणि सटीकं-३० |
| | | - |

પ્રકાશન ૧૩૯ થી ૧૮૫ આગમશુત પ્રકાશને પ્રગટ કરેલ છે.

--ઃ સંપર્ક સ્થળ :--

'આગમ આરાધના કેન્દ્ર' શીતલનાથ સોસાયટી-વિભાગ-૧, ફ્લેટ નં-૧૩, ૪થે માળે શ્રી નમિનાથ જૈન દેરાસરજી પાછળ, બ્હાઈ સેન્ટર, ખાનપુર અમદાવાદ-૧

''आगमसुत्ताणि-सटीकं'' ભાાગ १ थी उठ नुं विवरश

| आगमसुत्ताणि | समाविष्टाआगमाः |
|--------------|---|
| भाग- 9 | आयार |
| भाग-२ | सूत्रकृत |
| भाग-३ | स्थान |
| भाग-४ | समवाय |
| भाग-५~६ | भगवती (अपरनाम व्याख्याप्रज्ञप्ति) |
| भाग-७ | ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण |
| भाग-८ | विपाकश्रुत, औपपातिक, राजप्रश्निय |
| भाग-९ | जीवाजीवाभिगम |
| भाग-१०-११ | प्रज्ञापना |
| भाग-१२ | सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति |
| भाग- 🤋 ३ | जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति |
| भाग- 9 ४ | निरवायिलका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूिलका वण्हिदशा, चतुःशरण, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तद्भुनैवारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविद्या, देकेद्रस्तव, मरणसमिध |
| भाग-१५-१६-१७ | नीशीय |
| भाग-१८-१९-२० | बृहत्करूप |
| भाग-२१-२२ | व्यवहार |
| भाग-२ ३ | दशाश्रुतस्कन्ध, जीतकल्प, महनिशीथ |
| भाग-२४-२५ | आवश्यक |
| भाग-२६ | ओघनिर्युक्ति, पिण्डनिर्युक्ति |
| भाग-२७ | दशवैकालिक • |
| भाग-२८-२९ | उत्तराध्ययन |
| भाग-३० | नन्दी, अनुयोगद्वार |

